ॐ श्रीपरमात्मने नमः
कल्याण
वर्ष ६५
संख्या ८
भगवान

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०४८, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, अगस्त १९९१ ई०

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.५० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ५५.००रु०
विदेशमें ५ पौंड
अथवा ८ डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

वेणु-वादनका विलक्षण प्रभाव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥

वर्ष ६५ } गोरखपुर, सौरश्रावण, वि॰सं॰ २०४८, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१७, अगस्त १९९१ ई॰ { संख्या ५
पूर्ण संख्या ७७४

आनन्द-कन्द भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा

देखि री देखि आनंद-कंद।
चित्त चातक प्रेम घन, लोचन चकोरन चंद ॥
चलित कुंडल गंड मंडल झलक ललित कपोल।
सुधा सर जनु मकर क्रीड़त इंदु डह डह डोल ॥
सुभग कर आनन समीपै मुरलिका इहिं भाइ।
मनु उभै अंभोज भाजन लेत सुधा भराइ ॥
स्याम देह दुकूल दुति मिलि लसति तुलसी-माल।
तड़ित घन संजोग मानौ स्त्रेनिका सुक-जाल ॥
अलक अबिरल, चारु हास बिलास, भृकुटी भंग।
सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पंग ॥

याद रखो—जब कामना पूरी नहीं होती, उसपर चोट लगती है, हमारी इच्छाके विरुद्ध कुछ होता है, तब मनमें एक जलती हुई वृत्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम है क्रोध। क्रोध उत्पन्न होनेपर विवेक नष्ट हो जाता है, मन बे-काबू हो जाता है; वाणी मर्यादा, लज्जा तथा शील छोड़ देती है; व्याकुलता, उग्रता, अशान्ति, हिंसा और विनाशके भाव जाग उठते हैं।

याद रखो—जब क्रोध आता है, तब मुख तमतमा जाता है, आँखें लाल हो जाती हैं, भौंहें चढ़ जाती हैं। शरीर काँपने लगता है, होंठ चलने लगते हैं और इतनी मूर्खता छा जाती है कि क्रोधी मनुष्य आवेशमें भविष्यको भूलकर जो चाहे सो कर बैठता है।

याद रखो—क्रोधी मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रहता, उसकी पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है, गुर्देकी तथा यकृत्की क्रिया विकृत हो जाती है। मुखसे अनर्गल निकलनेवाले कुत्सित, अश्लील और हिंसा-भरे शब्द उसके शरीरपर वैसा ही प्रभाव डालते हैं। मनकी आग देहको भी जलाती है। संहार तथा विनाशका एक ऐसा घोर रूप बन जाता है जो शरीरके नाश—आत्महत्या आदिके लिये बलपूर्वक प्रेरणा देता है।

याद रखो—क्रोध तमोगुणका मूर्त रूप है। तमोगुण बुद्धिका विनाश करता है, नीच कार्य करवाता है, प्रमादमें प्रवृत्त करता है और अधोगतिमें ले जाता है। क्रोध महाशत्रु है और शान्ति-सुख, लोक-परलोक तथा भुक्ति-मुक्ति सबका सहज ही नाश कर देता है।

याद रखो—क्रोध शरीर तथा मनके सौन्दर्य-माधुर्यको नष्ट कर देता है। क्रोधी मनुष्यका मुख तथा सारा अङ्ग विकृत हो जाता है। उसकी मधुरता तथा सुन्दरता मर जाती है तथा मनमें रहनेवाले प्रेम, त्याग, दया, सेवा, शील, शान्ति, सद्भावना, न्याय, विवेक, वैराग्य, स्वास्थ्यकर विचार, आध्यात्मिक साधनाके भाव, जो मनके वास्तविक सौन्दर्य-माधुर्य हैं, मिट जाते हैं।

याद रखो—क्रोधको यदि तनिक भी रहने दिया जाय तो वह चिरस्थायी मानस रोग बन जाता है, जो स्वभावमें चिड़चिड़ापन, अविश्वास, अहंकार, उद्वेग, अस्थिरता, कपट, असहिष्णुता, दूसरोंको दुःख पहुँचानेकी इच्छा आदि नये-नये मानस रोगोंको उत्पन्न करता है और उन्हें बढ़ानेमें सहायक होता है। क्रोधसे दीर्घकालीन जन्मान्तरतक चलनेवाले वैर, हिंसा-प्रतिहिंसा-जैसे पतनकारी घोर दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं, जो हमारे सर्वनाशके कारण होते हैं।

याद रखो—जिसके मनमें क्रोध उत्पन्न होता है, वह क्रोध आते ही तुरंत जलने लगता है और जिसपर क्रोध आता है, वह क्रोधके व्यक्त होनेपर जलता है। फिर तो क्रोधाग्निमें परस्परके अनर्गल अविवेक-युक्त वाक्योंकी आहुति पड़ने लगती है, जो क्रोधको उत्तरोत्तर बढ़ाती रहती है।

याद रखो—उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त अन्यान्य सहस्रों दोषोंकी खान तथा योनि है क्रोध। अतएव क्रोधसे सदा ही बचना चाहिये। जब हम सबके मनकी नहीं कर सकते, तब सब हमारे मनकी करें—यह आशा हमें क्यों करनी चाहिये और जब भगवान्‌के मङ्गल-विधानानुसार फल पहलेसे निश्चित है, तब हमें क्यों कामना करनी चाहिये।

याद रखो—कामना और अपने मनकी हो—ऐसी इच्छा न होगी तो क्रोध आयेगा ही नहीं। फिर सदा शान्ति रहेगी। पर यदि किसी कारणसे क्रोध आ भी जाय तो उस समय उसे अपने अंदर ही रखकर अपने-आप मर जाने दो। बाहर उसकी क्रिया मत होने दो। क्रोध आनेपर बोलो मत। मौनका नियम कर लो या भगवान्‌के पवित्र नामका जप आरम्भ कर दो। क्रोधको आश्रय नहीं मिलेगा—अर्थात् उसके आवेशमें कोई क्रिया नहीं होगी, तो वह आप ही नष्ट हो जायगा।—**'शिव'**

स्वेच्छा, परेच्छा और अनिच्छा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्राचीन प्रवचनका एक अंश)

संसारमें जो भी कार्यवाही होती है, उसके पीछे तीन इच्छाएँ रहती हैं। परेच्छा, स्वेच्छा और अनिच्छा। अनिच्छाको ही देवेच्छा कहते हैं, देवेच्छासे कोई कार्य हो उसमें तो चिन्ता करे ही नहीं और देख-देखकर हँसता ही रहे। देवेच्छासे जैसे कोई समझो कि मनके अनुकूल कार्य हो या प्रतिकूल कार्य हो तो अनुकूलमें तो सब हँसते रहते ही हैं, किंतु प्रतिकूलमें भी हँसता ही रहे। देवेच्छा माने दैवी घटनासे अनायास कोई बात अपने मनके विपरीत हो गयी तो उसमें दुःख, शोक और चिन्ता हुआ करती है तो उस जगह खूब चित्तमें प्रसन्नता रखे। देवेच्छासे कोई अपना मकान गिर गया, मनके विपरीत कार्य हुआ, भूकम्प आ गया या कोई बाढ़ आ गयी या शहरमें महामारी फैल गयी, अपने घरमें कोई आदमी मर गया या घरमें आग लग गयी, किसी प्रकारकी कोई खराबी हो गयी, अपने शरीरमें बीमारी हो गयी, देवेच्छा माने अनिच्छा; उस अनिच्छासे अनिष्ट होवे तो उसमें चिन्ता हुआ करती है, भय होता है, उद्वेग होता है, दुःख होता है, चिन्ता होती है तो उसमें उसके विपरीत चित्तमें प्रसन्नता माननी चाहिये। आनन्द मानना चाहिये या यह समझना चाहिये कि भगवान् जो कुछ करते हैं वह हमारे भलेके लिये ही करते हैं। इसमें हमारा हित भरा हुआ है, अमङ्गलको भी मङ्गल ही समझे तो चिन्ता आदि हों तो वे चिन्ता-भय-शोक भी वहाँसे भाग जाते हैं। समझो कि मनके विपरीत घटना घट गयी तो रोनेसे क्या लाभ है ? कोई घरमें युवा पुरुष मर गया, लड़का ही मर गया तो रोनेसे वह लड़का वापस थोड़े ही आता है। आप चिन्ता करो, चाहे समझो कि कुछ भी लाभ नहीं है। तो ईश्वर-इच्छासे—देवेच्छासे कोई घटना घट जावे तो खूब आनन्द मनाना चाहिये, चाहे वह मनके कितना ही विपरीत हो।

परेच्छासे कोई ऐसी बात घट जाती है, दूसरेकी इच्छासे दूसरा कोई आदमी अपना अनिष्ट कर देता है, अपने मनके विपरीत कार्यवाही करता है, तब उसमें क्रोध आता है, दुःख भी होता है और द्वेष भी पैदा होता है, बदलेमें उसका अनिष्ट करनेकी इच्छा होती है, वैर-भाव होता है तो यह जो वैर-भाव है, द्वेष-भाव है, क्रोध है—ये सब अपने आत्माका पतन करनेवाले हैं। ऐसी परिस्थितिमें यह समझना चाहिये कि यह भगवान्का विधान है। भगवान्का हुकुम है, उसको भगवान्का भेजा हुआ पुरस्कार मानकर खुश होना चाहिये। जब भगवान्का भेजा पुरस्कार मान लेता है तो फिर वहाँ चिन्ता, शोक, भय नहीं आते। इस बातको समझानेके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है—भगवान् राम जब वनको चले गये तो कौसल्याने कैकेयीको दोष नहीं दिया और न मन्थराको ही दोष दिया। उन्होंने कहा कि यह तो मेरे दुर्भाग्यकी बात है, मेरे तकदीरकी बात है। तकदीरको हम भगवान्का विधान मान लें तो और भी आनन्द है, तकदीर बनाया तो भगवान्ने ही, तो भगवान्का विधान मान लेवे तो और भी उत्तम है। भगवान्का हुकुम मान लेवे तो और भी उत्तम है और भगवान्का भेजा हुआ पुरस्कार मान लेवे तो और भी उत्तम है और भगवान्की लीला मान लेवे तो विशेष उत्तम है। तो ये चार बातें जो मैंने कहीं, चारोंमें एक भी बात मान लेवे तो बेड़ा पार है अर्थात् चिन्ता-शोक-भय तो उसके पास आते ही नहीं। उसके चित्तमें द्वेष-भाव, वैर-भाव क्रोध-भाव—ये भी नहीं होते। होता यह है कि ये तो बिचारा पराधीन है, इसका क्या दोष है। यह एक प्रकारसे तो जो कुछ भी होता है भगवान्की मरजीसे होता है। यह विचारा क्या कर सकता है, इसपर दोष लगाना गलती है। कोई आदमी हमारा अनिष्ट कर देवे और वह पश्चात्ताप करे तो उसको आश्वासन देना चाहिये कि नहीं भैया ! तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। यह तो भगवान्का ही विधान था। यह तो भगवान् हमारे ऊपर दया करके हमारे पापका फल भुगताते हैं। आप तो केवल निमित्तमात्र हैं। आपका बिलकुल भी कसूर नहीं है। इस प्रकारसे उन्हें खूब आश्वासन देना चाहिये। ख्याल करो कि श्रवणकुमार जो वैश्यका लड़का था और उसको राजा दशरथने बाण मार दिया और उसकी मरनेकी तैयारी है, किंतु राजा दशरथ अपने द्वारा इसे पाप-कर्म हुआ मान करके पश्चात्ताप करते हैं, घबराते हैं, तो उनको घबराते देख वह उनको आश्वासन देता है कि राजन् ! आप कोई बातकी चिन्ता न करें। आपको ब्रह्म-हत्या नहीं लगेगी। मैं ब्राह्मणका बालक नहीं हूँ और अपने मरनेकी भी

मुझको कोई चिन्ता नहीं है, इस प्रकारसे राजाको आश्वासन दिया। तो कोई आदमी अपना अनिष्ट कर दिया हो या भूलसे उससे अनिष्ट हो जाय तो उसको धीरज देना चाहिये। कोई भाई अपने घरपर मिलनेके लिये आया है और रास्तेमें पड़ी लालटेन हो और ठोकर लगनेसे उसका गोला (शीशा) फूट गया और वह पश्चात्ताप करता है तो उसको आश्वासन देना चाहिये 'भैया ! तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है, तुम तो आ रहे थे, रास्तेमें किसीने लालटेन रख दी, तो तुम्हारा क्या दोष है। तुम तो हमारा कभी अनिष्ट चाहते ही नहीं हो, खराबी करते ही नहीं हो। यह तो एक प्रकारसे होनेवाली बात ऐसी ही थी तो हो गयी। इसपर आपको कोई विचार नहीं करना चाहिये।' इसी प्रकार किसीसे हमारा बड़ा काम खराब हो जावे, भावी अनिष्ट हो जावे, किसीको निमित्त बना करके उसको आश्वासन देना चाहिये, क्रोध नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य इस रहस्यको समझ जाता है कि होनेवाली कोई घटना है जो कि होकर ही रहती है और वह किसीको निमित्त बना लेती है, चाहे कोई आदमी मरता है तो वह भी बीमारीको निमित्त बना ले, चाहे किसी मारनेवालेको निमित्त बना ले। मारनेवाला तो कोई निमित्त ही बनता है। किंतु एक प्रकारसे उसका कोई दोष नहीं है, जब मेरी आयु है तो हमारे दुश्मन चाहे कितना ही विपरीत कार्य करें कोई हमारेको मार नहीं सकता।

जाको राखै साइयाँ मार सकै न कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

भगवान् जिसकी रक्षा करें, उसको कोई नहीं मार सकता है, चाहे सारी दुनियाके लोग दुश्मन हो जायँ और मारनेका प्रयत्न करें, किंतु बाल भी बाँका नहीं कर सकते। तो जो कुछ हमारा अनिष्ट होता है, वह तो हमारे प्रारब्धसे होता है और हम दोष दूसरेके माथेपर मढ़ते हैं, तो यह हमारी मूर्खता है। हर समय परिस्थिति मनके अनुकूल प्राप्त नहीं होती है, कभी प्रतिकूल भी होती है। यह तो होती ही रहती है, तो अनुकूलतामें हर्ष करना और प्रतिकूलतामें द्वेष करना या उद्वेग करना, क्रोध करना, भय करना यह मूर्खता है। तो जो भी कुछ कार्यवाही होती है अनिच्छासे या परेच्छासे, उसमें हर समय खुश रहना चाहिये। जो अनिच्छासे, देवेच्छासे कोई घटना हमारे मनके विपरीत घटती है तो समझना चाहिये कि स्वयं भगवान् कर रहे हैं। भगवान्‌के बिना, बतलाइये किसने किया। उन कर्ताको बतलाइये। फिर भी कोई कर्ता बन करके परेच्छासे हमारा कोई अहित कर रहा है तो यह समझना चाहिये कि यह भी भगवान्‌का विधान है, भगवान् ही करवा रहे हैं। निमित्त बना करके भगवान् ही करवा रहे हैं, जैसे अर्जुनको निमित्त बना करके कौरवोंकी सेनाको भगवान्‌ने मरवा दिया। किंतु वास्तवमें भगवान्‌के द्वारा वह सेना पहलेसे ही मारी गयी थी (गीता ११। ३४)। अर्जुन तो केवल निमित्तमात्र बन गया। इसी प्रकार भगवान् किसीको निमित्त बना देते हैं और करते स्वयं हैं। कराते हैं भगवान् ही किंतु भगवान्‌को भी कोई दोष नहीं देना चाहिये; क्योंकि भगवान् तो हमारे प्रारब्धके अनुसार ही सब कुछ करते हैं। तो इस प्रकारके तत्त्वको समझनेपर फिर मनमें क्रोध नहीं आता।

इस विषयमें महाभारतमें एक कथा आती है—एक गौतमी नामकी ब्राह्मणी थी। उसके लड़केको काले नागने—साँपने काट लिया, वह इतना विषधर साँप था कि डँसनेके साथ ही लड़का क्षणमात्रमें मर गया। वहाँ एक अर्जुन नामका व्याध था, उसने साँपको पकड़ लिया और पकड़कर उसे मारनेके लिये तैयार हुआ और उसने गौतमी ब्राह्मणीसे कहा—इसी साँपने तेरे लड़केको काटा है यदि तुम हुकुम दो तो इसे मैं मार डालूँ। वह बोली—इसके मारनेसे मेरेको क्या लाभ होगा, इस वास्ते इसको तुम मत मारो। व्याधने कहा—तुम न भी हुकुम दोगी तो भी मैं इसको मारूँगा, क्योंकि इस अन्यायीने बिना ही अपराध इस लड़केको मार डाला, तो मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा। जब वह साँपको मारने लगा तो साँपने कहा—भाई ! तू मुझको क्यों मारता है, मृत्युने मुझको प्रेरणा दी, मैंने इसको मार डाला तो दोष तो मृत्युका है, मेरा कोई दोष नहीं। उसी समय मृत्यु देवता प्रकट हो गये। मृत्यु स्वयं देवताके रूपमें प्रकट होकर कहने लगे—इसमें न तो इस साँपका दोष है और न मेरा ही दोष है, इसका काल आ गया, इसकी आयु समाप्त हो गयी तो कालने मेरेको प्रेरणा की तो मैंने इसको मार डाला। यह कहनेके साथ ही काल देवता प्रकट हो गये। काल देवताने कहा—न तो इस साँपका दोष है, न मृत्युका और न मेरा ही दोष है। हम तीनों ही निर्दोषी हैं। इसके पूर्वके कर्म ऐसे ही थे। इसके पूर्व किये हुए कर्मोंकि

अनुसार ही इसका प्रारब्ध बना, उस प्रारब्धने मुझको प्रेरणा की और मैंने मृत्युको प्रेरणा की, मृत्युने साँपको प्रेरणा की। इसलिये साँप, मृत्यु और मैं तीनों ही निर्दोष हैं। अर्थात् इसके कर्म ही ऐसे थे। यह निर्णय करके वे काल, मृत्यु वहीं अन्तर्धान हो गये और उस लड़केकी माता गौतमी ब्राह्मणीके अनुरोधसे उस अर्जुन नामक व्याधने उस साँपको छोड़ दिया। साँप चला गया।

इस निर्णयसे यह बात निकल आयी कि साँप, मृत्यु और काल—ये तीनों तो निमित्त बन गये और वास्तवमें हमारे अनिष्टमें हेतु जो है वह हमारे पहलेके किये हुए पाप ही होते हैं। हमारे कर्मोंसे प्रारब्ध बनता है, जो कुछ होता है प्रारब्धसे होता है। प्रारब्धके बनानेवाले हैं भगवान्! समझो कि उस प्रारब्धका नाम ही भगवान्‌का विधान है। ज्ञानके मार्गमें उसे प्रारब्ध कहते हैं और भक्तिके मार्गमें उसको विधान कहते हैं और विधानका नाम ही भगवान्‌का आदेश है, कैसे भी हो जो कुछ भी दूसरा आदमी हमारा अनिष्ट करता है, वह निमित्तमात्र ही है और वास्तवमें बात यह है कि हमारे कर्मोंके अनुसार ही हमारा प्रारब्ध बना है याने हमारे कर्मोंके अनुसार ही भगवान्‌ने ऐसा विधान बना दिया है। जो कुछ होता है भगवान्‌के विधानसे ही होता है। इसलिये हमारे मनके विपरीत कोई कार्य अनिच्छासे या परेच्छासे हो तो उसमें आनन्द मानना चाहिये। खूब प्रसन्नचित्त होना चाहिये और अनिष्ट करनेवाला जो है उसको आश्वासन देना चाहिये कि इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है, यह हमारे तकदीरकी बात है, यह ज्ञानकी बात है। भक्तिके मार्गमें भगवान्‌का विधान बतलाना चाहिये और मनमें भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार मानकर प्रसन्न होना चाहिये। आनन्द मानना चाहिये और उससे भी बढ़ करके यह बात है कि भगवान्‌की लीला हो रही है ऐसा समझ करके इसमें सदा प्रसन्न रहना चाहिये। अपने मनके विपरीत कार्यवाहीको देख-देखकर हर समय आनन्द मानना चाहिये। चाहे वह हमारे मनके विपरीत कार्यवाही हो, चाहे हमारा कोई दुश्मन करता हो, और चाहे देवेच्छासे अपने-आप ही वह कार्यवाही हो। अपने-आप ही जो कार्यवाही होती है उसके पीछे कोई कर्ता नहीं है तो क्रोध नहीं आता, दुःख तो होता ही है, चिन्ता होती है, वह भी हमारी मूर्खता है, वह बात जो होनेवाली है, वह हो करके ही रहेगी। इस बातको ख्यालमें ला करके भी हमें दुःख नहीं करना चाहिये।

तीसरी इच्छा है—अपनी इच्छा। अपनी इच्छा तो करनी ही नहीं, इच्छाका त्याग ही कर देना चाहिये। इच्छा-कामना-वासना-लालसा-तृष्णा—ये उस इच्छाके ही भेद हैं। तो इच्छामात्र एक प्रकारसे दुःख देनेवाली है, जन्मको देनेवाली है, इसलिये किसी प्रकारकी मनमें कामना रखनी ही नहीं चाहिये। किसी प्रकारकी मनमें कामना करनी ही नहीं, हमारे पासमें रुपये हैं, हमारे पुत्र भी हैं और हमारा संसारमें मान भी है, सत्कार भी है, इसके और बढ़नेकी इच्छा भी करते हैं, हमारे और भी लड़का होवे, और भी धन होवे, और भी हमारी बड़ाई होवे, मान होवे तो इसका नाम तृष्णा है और मान-बड़ाईकी इच्छा है तो इसका नाम लोकैषणा है। पुत्रकी जो इच्छा है सो उस इच्छाका नाम पुत्रैषणा है और धनकी इच्छाका नाम या धनसे होनेवाले जो पदार्थ हैं, उसकी इच्छाका नाम वित्तैषणा है। वित्त माने धन, ये जो तीनों प्रकारकी इच्छाएँ हैं इनको तृष्णा कहते हैं, तृष्णा मनुष्यको जलाती रहती है। अतः तृष्णा करनी ही नहीं, इससे थोड़ी हलकी जो चीज है उसका नाम कामना है—जो अभावमें होती है। हमारे पासमें रुपये भी हैं और मान-प्रतिष्ठा भी है, किंतु कोई लड़का नहीं है; वहाँ लड़केकी कामना होती है, लड़केकी जो इच्छा होती है उसको पुत्रकी कामना कहते हैं। यह भी एक प्रकारसे जलाती रहती है। कोई कामना करनेसे पुत्र होता नहीं, भाग्यमें होता है तभी होता है, कामना तो मात्र जलाती रहती है और इससे भी और हलकी जो कामना है उसको इच्छा कहते हैं, जैसे किसी चीजका अभाव है, दूसरा आदमी उसको देना चाहता है। जैसे हम भोजन करते हैं और दूसरा भाई परोसता है। लड्डू ले लो, जलेबी ले लो, कचौड़ी ले लो और हम ना-ना करते हैं। हमारे पत्तल या थालीमें जो चीज नहीं देखता है, उसके लिये आग्रह करता है और उसको लेनेकी थोड़ी मनमें मनसा भी है, तो उसका नाम वहाँ इच्छा है और वह पूछता है आपकी क्या इच्छा है ? तो वह कहता है कि नहीं कोई इच्छा नहीं, तो इच्छा जो है वह और हलकी होती है। इसी प्रकार इच्छासे भी हलकी चीज आवश्यकता है। जब कोई आदमी किसी चीजकी आवश्यकता समझता है तो कहता है कि यह तो आप

स्वीकार कर लो, कोई साधु हैं उनसे कहो कि आपका कपड़ा फट गया है, इसको बदल लें। साधु कहता है, कोई आवश्यकता नहीं। बोले आवश्यकता तो है, पर आप बदलते नहीं, तो हम जबरदस्ती बदल देते हैं, तो एक आवश्यकताकी पूर्ति हुई उससे भी हलकी चीज वासना है। वासना उसका नाम है कि जिसमें मन बसे, न तो हम इच्छा ही करते हैं उसके लिये और न कोई उसकी आवश्यकता ही समझते हैं, किंतु मनमें वह बात रहती है कि जो चीज हमारेको प्राप्त हुई है वह बनी रहे। उस बनी रहनेकी जो एक प्रकारसे कामना है उसका नाम वासना है। उससे भी और सूक्ष्म वासना होती है कि सारी दुनियाकी कोई परवाह नहीं किंतु मैं बना रहूँ, अपने-आपके लिये यह है कि मैं अभी जिन्दा रहूँ, मरूँ नहीं, इस प्रकारसे भीतरमें जो एक सूक्ष्म कामना है, उसका नाम भी एक प्रकारकी वासना है। यह सभी दुःख देनेवाली चीज है। किसी भी चीजकी मनमें इच्छा नहीं रखनी चाहिये। कोई इच्छा करता है जीनेकी तो कोई जी नहीं सकता, मरनेकी इच्छा करे तो मर नहीं सकता, तो इच्छा करना तो व्यर्थ ही है; न जीनेकी इच्छा करनी चाहिये, न मरनेकी इच्छा करनी चाहिये। किसी भी बातकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, जो कुछ हो रहा है, उसे देखता ही रहे।

साधक

देव ! यदि मैं बोल पाता !
तो ग्रसित ग्रन्थी हृदयकी आज अपनी खोल पाता।
देव ! यदि मैं बोल पाता॥

चिर समय मुझको हुआ था, आपकी आराधनामें,
कौन था, क्या था, कहाँ था, क्या हुआ चिर-साधनामें—
ये सभी झंझट झगड़ते, किंतु सबको भूल पाता,
देव ! यदि मैं बोल पाता॥ १॥

सो चुका संसार सारा था, निशाका अङ्क पाये,
खोजता तुमको फिरा था, साथमें अवलम्ब था ये,
आज ये दुख दूर होकर, चित्त मेरा मोद पाता—
देव ! यदि मैं बोल पाता॥ २॥

भूल तुम मुझको चुके थे, किंतु मैं था याद करता,
हो चुका पतझड़ सभी था, पातपर मैं आश करता
छोड़ते जाते सभी फिर, जोड़ता नव-नेह-नाता—
देव ! यदि मैं बोल पाता॥ ३॥

हो चुकी उर्वर हृदयकी तप्त ये मेरी स्थली थी,
धमनियोंका रक्त रुककर, बढ़कर रही फिर बेकली थी,
किंतु इनको तुच्छ लखकर क्या न बन जाता सुज्ञाता—
देव ! यदि मैं बोल पाता॥ ४॥

जो तनिक तुम बोल लेते, तो समझता भाग्य मेरा,
चल पड़ा अब स्वर्णका संसार पानेको घनेरा,
प्रेममय, उल्लास-मिश्रित, हर्षके मैं गीता गाता—
देव ! यदि मैं बोल पाता॥ ५॥

कुण्डलिनी-शक्तियोग

(पं॰ श्रीत्र्यम्बकभास्करजी शास्त्री खरे)

[गताङ्क पृ॰ सं॰ ४९४से आगे]

योगके भेद

योगशास्त्रके ग्रन्थोंमें योगके मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग—ये चार विभाग किये गये हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मयोग, भक्तियोग और राजयोग—ये तीन मुख्य विभाग हैं। सम्मोहन-तन्त्रमें पाँच विभाग हैं—ज्ञानयोग, राजयोग, लययोग, हठयोग और मन्त्रयोग। इन योगोंका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

ज्ञानयोग—इस योगमें स्थूल शरीरसे लेकर सूक्ष्म, कारण, महाकारण और फिर अतिमहाकारण देहतक सब देहोंकी पञ्चीकरणकी दृष्टिसे तथा व्यतिरेक और अन्वयसे आत्मासे भिन्नता सिद्ध करते हैं और चित्त-वृत्तिका लय करते हुए ज्ञानकी जो सात भूमिकाएँ—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभाविनी तथा तुर्यगा हैं, उन्हें पार करते हुए विक्षिप्तता, गतायाता, संश्लिष्टता और सुलीनता—इन चार अवस्थाओं तथा लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद—इन चार विघ्नोंको लाँघकर केवल निरालम्ब स्थितिमें तल्लीन होकर रहनेको कहा गया है।

राजयोग—इस योगका आधारभूत ग्रन्थ है—पातञ्जल योगदर्शन। इसमें चार पाद वर्णित हैं—१-समाधिपाद, २-साधनपाद, ३-विभूतिपाद और ४-कैवल्यपाद। अष्टाङ्गयोग-साधन करके शरीरके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें मनः संयम करे। इस संयमसे सभी सिद्धियाँ साधकको प्राप्त हो जाती हैं। परंतु ये सिद्धियाँ आत्मस्थितिमें अन्तराय हैं। इसलिये विवेकख्याति करके निर्विकल्प समाधि-सुख-लाभ करना चाहिये, यही परम उपदेश है। **'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'**—इस योगसूत्रके अनुसार ध्यानयोग राजयोगका ही एक भाग माना गया है। भवन, कर्म और ध्यान इस योगके भेद हैं। भवनका अभिप्राय यह है कि मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रतक सप्तलोकव्याप्त प्रकाशरूप एक दण्ड है, उसमें जलज, उद्भिज्ज, जारज, देव, दानव, मानव—ये सब एक-पर-एक अपने तेजोरूप दण्डमें रहते हुए समाविष्ट हैं, इस प्रकारकी भावना करे। कर्मका अभिप्राय है कि मैं ब्रह्मशक्तिसम्पन्न हूँ, ऐसा जप करे। ध्यानमें साधक—

शुद्धमात्मानमखिलं शुद्धज्ञानतपोमयम्।
शुद्धेन्द्रियगुणोपेतं परं तत्त्वं विभावये॥

—यह कहकर भ्रूमध्यमें शुभ्र कमलके बीच परमपुरुषका ध्यान करे।

लययोग—प्राणशक्ति, कुण्डलिनीशक्ति, मन, मनकी वृत्तियाँ—इन सबका लय जिस योगमें किया जाता है वह लययोग है। कुण्डलिनीशक्ति योगतन्त्रमें और हठयोगमें भी वर्णित है। कुण्डलिनीयोगमें यम-नियमादि अष्टाङ्ग साधन बताकर शोधन, धृति, स्थिरता, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्विकल्प-समाधि—ये सात अङ्ग वर्णित हैं। कुछ ग्रन्थोंमें षट्चक्र, उनके दलोंके रंग, उन दलोंपर स्थित मातृकाएँ तथा उन चक्रोंके देवता आदि किञ्चित् अन्तरसे भी वर्णित हैं।

समय-मतके अनुसार यह बताया है कि सहस्रारचक्रमें कामेश्वरी और कामेश्वरका ध्यान करे। श्रीकामेश्वरी और श्रीकामनाथ आद्यगुरु हैं, इसलिये उनका स्थान सहस्रारके अन्तमें श्रीगुरुपादुका ही बताया है। मूलाधारसे सहस्रारतक सब चक्रोंके स्थान स्थूल देहगत स्थानोंके समीप ही बताये गये हैं। परंतु स्थूल देहगत स्थान विद्युत्के बिना विद्युद्दीपके समान है। विद्युत्के बिना प्रकाश कहाँ ? जैसे विद्युद्धाराके चलते ही विद्युद्दीप प्रकाशमान होते हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनीका उत्थापन होनेसे ही ये चक्र अपने-अपने वर्णोंके साथ प्रकाशित हुए दीख पड़ते हैं। ये चक्र मेरुदण्डगत सुषुम्ना नाडीके भीतर वज्रा नाडी और ब्रह्म नाडीसे संलग्न हैं। उसी प्रकार ये चक्र प्राणमय, तेजोमय और मनोमय कोषके भीतर हैं। सहस्रारचक्र ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर चार अङ्गुल फैला हुआ है। जिनकी दृष्टि दिव्य हो चुकी है, वे ही इन चक्रोंके नाना प्रकाशरूपी मातृकाओंका अनुभव करते हैं। अन्य लोग दृढ़ भावनाके साथ तत्तत्-चक्रकी मातृकाओं, उनके वर्णों और तत्त्वोंका प्रकाशरूपमें ध्यान कर सकते हैं। षट्चक्रनिरूपणग्रन्थमें कुण्डलिनीका उत्थापन नहीं है, पर उसका चिन्तन करनेको

कहा है। भावनासे और क्रमशः इष्टदेवप्रसादसे तथा गुरुकृपासे यह कुण्डलिनीयोग सिद्ध होता है। इस भावनासे जो अनुभव प्राप्त होता है वही अनुभव हठयोग-साधनसे प्राप्त होता है। हठयोगसे कुण्डलिनी-उत्थान हो जाय तो भी इष्टदेवता-प्रसादसे दिग्बन्धका होना तो आवश्यक ही है, नहीं तो पिशाचादि अनिष्ट भूतसङ्घद्वारा प्रत्यवाय हो सकता है। इष्टदेवके प्रसन्न होनेपर इष्टदेव ही मानवरूप धारणकर साधकसे योगकी सब क्रियाएँ करा लेते हैं। तन्त्रशास्त्रके इस लय-योगमें कुण्डलिनीका जागना केवल गुरुकृपासे होता है। इसलिये इस सम्प्रदायमें गुरु ही मुख्य देवता माने गये हैं। तन्त्रमार्गीय गुरु शक्तिपात करके शिष्यके भ्रूमध्य और विशुद्धाख्यमें स्पर्श कर प्रकाशका अनुभव कराते हैं।

लययोगमें हठयोगकी तरह ही योगनाडियोंका वर्णन है। इडा नाडी (बायें नासारन्ध्रसे चलनेवाली) चन्द्रनाडी है। उसका वर्ण शुभ्र है और पिङ्गला (दायें नासारन्ध्रसे चलनेवाली) सूर्यनाडी रक्तवर्णकी है। इन दोनोंके बीचमें सुषुम्नानाडी है। इडा और पिङ्गला सुषुम्ना नाडीको लपेटे हुई चलती हैं। इन दोनों नाडियोंकी वक्रगतिसे षट्चक्रोंमेंके पाँच चक्र बनते हैं, इन्हें पञ्चचक्र कहते हैं। इडा नाडीको अमृतविग्रहा और पिङ्गला नाडीको रौद्रात्मिका कहते हैं। ये दोनों नाडियाँ कालस्वरूप दीखती हैं। ये दोनों नाडियाँ जब सम-गतिसे चलती हैं, तब सुषुम्ना नाडीमें उनका लय होता है। इसी अवस्थामें सुषुम्ना नाडीमें कुण्डलिनी प्रवेश करती है। योगीलोग सुषुम्ना नाडीमें प्रवेश करके महाप्रयाणका समय बदल देते हैं। इसीलिये कहते हैं कि सुषुम्ना नाडी कालभक्षक या कालरोधक है। कुण्डलिनी सुषुम्ना नाडीमें प्रवेश करके सहस्रारचक्रमें पहुँचकर वहाँ जब शान्त होती है तब उस अवस्थाको समाधि कहते हैं। योगी जब इस समाधिस्थितिमें होते हैं तब उनके शरीर विकाररहित अर्थात् **'वर्धते, विपरिणमते, नश्यतीति'**—इन विकारोंसे रहित होते हैं। उनके नख-केशादि नहीं बढ़ते। प्राणक्रिया बंद होनेसे नाडीका चलना और हृदयका आकुञ्चन-प्रसरण बंद हो जाता है, इसलिये ऐसे योगीको कालभक्षक अथवा कालान्तक योगी कहते हैं।

इस लययोगमें नाडीशुद्धि अथवा नाडीजय करनेके लिये कोई खास क्रिया साधन नहीं बताया है। इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाडियाँ आज्ञाचक्रके समीप मुक्त-त्रिवेणीरूप दिखायी देती हैं और मूलाधारसे जहाँ वे निकलती हैं वहाँ उन्हें युक्त-त्रिवेणी कहते हैं। इडा, पिङ्गला नाडियोंकी वक्रगतिसे षट्चक्रमेंसे जो पाँच चक्र बनते हैं वे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्धाख्य हैं।

पञ्चतत्त्वात्मक पञ्चचक्र जो मेरुदण्डगत सुषुम्ना नाडीसे सटे हुए हैं वे इस प्रकार हैं—'पृथ्वीतत्त्वका दर्शक मूलाधार चक्र, अप्तत्त्वका दर्शक स्वाधिष्ठानचक्र और तेजस्तत्त्वका दर्शक मणिपूरचक्र है। वायुका अधिष्ठान अनाहतचक्रमें है और आकाशतत्त्वका अधिष्ठान विशुद्धिचक्रमें। आज्ञाचक्र तृतीय नेत्रका आधारभूत चक्र है। एक स्थानमें यह कहा है कि जिसे षट्चक्रका ज्ञान नहीं वह कुण्डलिनीको नहीं जगा सकता और दिव्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता।

हठयोग—योगशास्त्रोंमें इस हठयोगको प्रायः राजयोगका अङ्ग माना गया है। 'ह' माने सूर्य—पिङ्गला दाहिनी ओरकी वायु और 'ठ' माने चन्द्र— इडा बायीं ओरकी वायु। वायुको अंदर खींचना है 'ह' और बाहर छोड़ना है 'ठ'। **'प्राणापानौ समौ कृत्वा'** अथवा **'अपाने जुह्वति प्राणम्'** यह जो विद्या है, वह हठयोगके बिना नहीं सिद्ध होती। **'चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः'**—इस वचनमें चक्षु एकवचन है अर्थात् इस चक्षुसे तृतीय नेत्रका अभिप्राय है। कुण्डलिनी जबतक आज्ञाचक्रमें नहीं पहुँचती, तबतक यह क्रिया हो ही नहीं सकती। 'हठयोगप्रदीपिका'में कहा ही है—**'केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।'**

यम-नियम और आसन—इन तीन साधनोंके सिद्ध होनेपर नाडी-शुद्धि या नाडी-जय साधनेको कहा है। नाडी शब्दका (नाड् गमने) अर्थ है, विशेष प्रकारकी गति जिसमें है—वह। नाडी-जयका अर्थ है श्वास-जय। अमुक समयमें अमुक ओरसे ही श्वास चले ऐसा अभ्यास जब पक्का हो जाय तब यही नाडीजय है। इसीको नाडीशुद्धि कहते हैं।

नाडीजयके लिये आदिनाथ श्रीशङ्करने श्रीपार्वतीजीको 'शिवस्वरोदय' शास्त्र सुनाया। 'शिवस्वरोदय' स्वरशास्त्रका स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इडा और पिङ्गला मनुष्यमात्रके नासारन्ध्रोंमेंसे

चलनेवाली नाडियाँ हैं। प्रत्येक नाडी २ घंटे २४ मिनट चलती है, तब दूसरी नाडीका चलना आरम्भ होता है। प्रातःकाल सूर्योदयके समय यदि इडाका चलना आरम्भ हो तो इसके २ घंटे २४ मिनट बाद पिङ्गलाका चलना आरम्भ होगा। 'शिवस्वरोदय'में भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये भिन्न-भिन्न नाडियोंका चलना आवश्यक बताया गया है। अमुक कार्यके होते अमुक ही नाडी चले, ऐसा विधान है। भोजनके समय चन्द्र नाडी; प्रातर्विधिके समय, सोते समय तथा क्रूर कर्मके समय सूर्य नाडी; यजन, याजन, दान-अध्ययनादि शान्त कर्मोंमें चन्द्रनाडी चले। जो योगारूढ़ होना चाहें उनके लिये यह बताया है कि सूर्योदयसे सूर्यास्ततक चन्द्र अथवा सूर्य कोई भी एक ही नाडी चलती रहे, ऐसा अभ्यास करें। बारह घंटे बराबर एक ही नाडीका चलना सिद्ध होनेपर नाडीमें उदय होनेवाले पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाशतत्त्वोंका अभ्यास करें। तत्त्वोंका उदयास्त समझनेके लिये विशिष्ट गतिकी मर्यादा बतायी हुई है। प्रातःकाल या सायंकालमें ४ घंटे ४८ मिनट आकाशतत्त्व ही स्थिर रहता है, उसी समयको संधिकाल कहते हैं और यही संध्या-वन्दनका समय है। आकाशतत्त्वके उदयके समय अथवा पृथ्वीतत्त्वके उदयके समय २-३ मिनटतक समस्वर रहते हैं अर्थात् उस समय दोनों स्वर चलते हैं। यह सुषुम्ना नाडी है। इस नाडीको ऐसे ही स्थिर करके यदि प्राणायाम किया जाय तो वह सिद्ध होता है। यही प्राणजय है। नाडीशुद्धि होनेपर धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाति ये षट्कर्म बताये हैं। **'श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः'**—यह पातञ्जलयोगका सूत्र है—यह श्वासायाम है, प्राणायाम नहीं। श्वासकी अपेक्षा प्राणशक्ति अधिक सूक्ष्म है, इसलिये इस सूत्रका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि श्वासायाम साधनेसे प्राणायाम आप ही पीछे होने लगेगा। रेचक, कुम्भक और पूरकसे एक प्राणायाम होता है। कुम्भकके भ्रामरी, भस्त्रा, मूर्छा, प्लाविनी, केवली ये भेद हैं।

अनन्तर महामुद्रा, महाबन्ध, खेचरी, मूलबन्ध, उड्डीयान, जालन्धर बन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी और महावेध—ये दस मुद्राएँ साधकको साधनी पड़ती हैं तब कुण्डलिनी जाग्रत् होती है। षट्चक्रोंके ऊपर हठयोगमें त्रिकूट, श्रीहाट, गोल्लाट, औटपीठ और भ्रमरगुम्फा नामके पाँच चक्र और बताये हैं।

इस साधनामें अन्तमें वही कैवल्य प्राप्त होता है जो राजयोगसे प्राप्त होता है और सब योगसिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं।

मन्त्रयोग—मन्त्रयोगमें भक्तियोग आ जाता है। इस योगमें प्राणायामको छोड़ बाकीके सात अङ्ग हैं और चक्रोंमेंसे तीन चक्र हैं—मूलाधार, मणिपूर और आज्ञा। मन्त्रयोगमें मन्त्रजपसे भी प्रकाश-साक्षात्कार होता है।

उपर्युक्त वर्णित सभी योगोंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्म, ज्ञान और भक्ति—योगके ये तीन प्रकार बताये गये हैं, तथापि ज्ञानके बिना भक्तियोग नहीं होता और कर्मके बिना ज्ञान नहीं होता, इसलिये ये तीनों योग युक्त-त्रिवेणीरूप हैं। वैसे तो इन पाँच योगोंकी यह पञ्चवेणी है।

लययोग—कुण्डलिनी-शक्तियोग सिद्ध होनेपर श्रीभगवतीकी कृपासे साधक सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है। सब कलाएँ, सब सिद्धियाँ उसे अनायास प्राप्त हो जाती हैं और वह सर्वथा कृतकृत्य हो जाता है। (समाप्त)

मेरे जीवनमें भगवान्‌का बल आ गया है

मेरे जीवनमें भगवान्‌का बल आ गया है। इससे मेरी इन्द्रियोंकी गुलामी, मनकी गुलामी, भोगोंकी गुलामी, दुराचारकी गुलामी— सभी निन्दनीय तथा मुझको पतनके गर्तमें गिराये रखनेवाली गुलामियाँ दूर हो गयी हैं। अब नित्य अपनी सर्वशक्तिमत्ता तथा सौहार्दको लिये हुए भगवान् मुझे अपनी संनिधिका अनुभव कराते रहते हैं। वे निरन्तर मेरे साथ रहते हैं, अतः मैं उनके बलसे बलवान् हो रहा हूँ और उनके अपराजित बलके सामने सब दुष्टोंका बल परास्त हो गया है तथा उनका दल बिलकुल बिखर गया है। अब मेरा जीवन केवल भगवान्‌के बलका आश्रय करके सर्वथा स्वतन्त्र तथा शक्तिमान् हो गया है; क्योंकि मेरे जीवनमें भगवान्‌का बल आ गया है।

राम, कृष्ण, शिव आदिकी एकता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रवचन)

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

जो विषय भगवान्से विमुख करनेवाले हैं, उनसे वैराग्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे हम भगवान्के पास पहुँच सकते हैं। भगवान्की दयासे यह कार्य जल्दी हो सकता है। उसकी दया है ही। उसकी दयापर विश्वास करके निष्कामभावसे भजन करते रहना चाहिये। निष्कामभाव जितना आ सके, उतना ही अच्छा है। भजन करनेमें इतना ख्याल रखना चाहिये कि हमारा उद्देश्य केवल भगवान्की प्राप्तिके लिये है और संसारके जितने भी कार्य हैं, वे इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हैं। संसारके जितने कार्य हैं, उनका निषेध नहीं, पर उनका पर्यवसान भगवान्में ही हो, यही देखना चाहिये। और इसका अनुसंधान नहीं करना चाहिये कि इसका फल क्या होगा? उसे भगवान्पर छोड़ देना चाहिये।

कुछ लोगोंके मनमें ऐसा भ्रम है कि अपने इष्टकी उपासनाके सिवा और किसी देवी-देवताका नाम लेना ठीक नहीं, इसके सम्बन्धमें अभी जयपुरसे एक पत्र आया है कि यहाँके कीर्तनमें एक महात्मा पहुँचे, जो कहते थे कि— 'रामका उपासक यदि कृष्णका नाम ले अथवा कृष्णका उपासक यदि रामका नाम ले तो ये दोनों एक दूसरेके प्रति पाप करते हैं, यह अशास्त्रीय है।' किसी भी आचार्यने राम और कृष्णमें भेद नहीं माना और बात भी यही है कि ये दोनों एक ही हैं। मैंने जयपुरके सज्जनको लिखा—

'भगवान् एक ही हैं, वे अनेकों रूपोंमें लीला करते हैं। वे ही राम हैं, वे ही कृष्ण हैं, शिव हैं। इसी भगवान्को शैव शिव कहते हैं, वैष्णव कृष्ण या राम कहते हैं। अगर हम यह समझ लें कि हमारे राम ही भगवान् हैं, कृष्ण नहीं तो हमने अपने रामकी सीमा लाँघ ली, हमने अपनी बुद्धिसे ही भगवान्को अल्प बना लिया है। हमें मानना चाहिये कि हमारे भगवान् ही विविध रूपोंमें हैं। चाहे कोई किसी भी रूपमें पूजे वह हमारे भगवान्को ही पूजता है। एक ही भगवान् अनेक रूपोंमें लीला करते हैं। वृन्दावनकी गोपियाँ तो कृष्णको ही मानती हैं, वही इनके इष्ट हैं। अपने इष्टमें अनन्यता होनी अच्छी बात है। परंतु अलग-अलग यदि बहुत-से भगवान् हो जाते हैं तो मुश्किल हो जाती है। (जिसका अंश होता है, वह अनन्त नहीं होता) भगवान् तो पूर्ण हैं और जितने भगवान् हैं, वे एक ही भगवान् हैं। जो जिस रूपकी उपासना करते हैं, उसमें अनन्यता होनी ही चाहिये।

शिवपुराणमें वे कहते हैं कि शिव ही सब कुछ हैं और विष्णु हमारे रूप हैं, ऐसी ही बातें वैष्णव-पुराणोंमें भी हैं। शिव और विष्णुके नामोंमें भेद मानना एक अपराध है। शिवका अर्थ कल्याण है। अगर हम यह मानें कि भगवान् कल्याणमय नहीं हैं तो यह कहना ठीक नहीं। भगवान् कहते हैं कि मुझमें और शिवमें अन्तर नहीं है, मैं ही शिव हूँ और शिव ही मैं हूँ। यदि यही बात है तो फिर भगवान्ने शिवकी पूजा क्यों की? भगवान् कहते हैं कि हम एक दूसरेकी पूजा करके आदर्श उपस्थित करते हैं। पद्मपुराणमें भगवान् राम और शिव एक जगह मिलते हैं—भगवान् शिवसे कहते हैं कि आप और मैं एक ही हैं, जो इसमें भेद मानता है वह नरकगामी होता है, **'सेवक स्वामि सखा सिय पीके।'** शिवजी निरन्तर रामका जप करते हैं और भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। जरा-सा तत्त्वके समझनेका फेर है।

जिन शास्त्रोंके आधारपर हम शिवको मानते हैं, उन्हींमें शिवके वचनोंको हम न मानें तो यह दुःखकी बात है। अभी हालहीमें वृन्दावनमें एक घटना हुई है जो दुःखकी बात है। कुछ लोग चाहते थे कि भगवान्का मुकुट दाहिने रहना चाहिये और कुछ लोग चाहते थे कि बायीं तरफ होना चाहिये। इस प्रश्नको लेकर आपसमें इतना वैमनस्य हुआ कि इसपर केस चला। उस समय हाकिम मुसलमान था। उसके सामने वाणियोंका मखौल उड़ाया गया। महात्माओंकी जो वाणियाँ बड़ी गुप्त रखी जाती हैं, वे वाणियाँ मुसलमान हाकिमके सामने सुनानेमें जरा भी संकोच नहीं हुआ। एक आदमी इसी सिलसिलेमें कुएँमें भी डूब मरा। चाहे हम मुकुटको दाहिने रखें या बायें रखें, इसमें भगवान्को आपत्ति नहीं। तुलसीदासजी वृन्दावनमें कृष्णजीके

मन्दिरमें जाते हैं और मुरलीधर भगवान्‌को देखकर कहते हैं—

कहा कहौं छबि आज की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, जब धनुष बाण लो हाथ॥

तुलसीदासजी यह नहीं कहते कि ये दूसरे हैं, परंतु वे अपने प्रभुको धनुष-बाण हाथमें लिये देखना चाहते थे, इसीसे कहते हैं कि नाथ! आपने आज तो धनुषको छिपा दिया है, तरकस भी नहीं है, बल्कि आज तो मुरलीधारी हैं, आज आप खूब बने हैं।

अगर हमारे सामने हमारा कोई परिचित स्वाँगका रूप धरकर आवे तो हम यही कहेंगे कि आप भले बने हो, जब तुलसीदासजी ऐसा कहे तो भगवान् धनुष-रूपधारी हो गये, तब उन्होंने सिर नवाया। तुलसीदासजी यहींतक नहीं मानते कि राम, कृष्ण नहीं हैं, परंतु वे विनयपत्रिकाके एक पदमें कहते हैं कि—'ऐ संसार! तू वहाँ जाओ, जहाँ नन्दकुमार नहीं हैं। दशरथ-कुमारके वे उपासक हैं, परंतु वे दोनोंको एक ही मानते हैं—

मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरि के बल, प्रगट कपट-आगार॥
(विनयपत्रिका)

रामायणमें भगवान् वाल्मीकिजीसे रहनेका स्थान पूछते हैं। इसपर वाल्मीकिजी भगवान्‌से पूछते हैं कि आप पहले यह बतलाइये कि आप कहाँ नहीं हैं, तब मैं आपको रहनेका स्थान बतलाऊँ।

नानकजी मक्का जाते हैं, वे वहाँकी मस्जिदमें उधरको ही पैर करके सो गये, इसपर वहाँके मुसलमान बिगड़े और उनसे पूछा कि खुदाकी ओर पैर करके क्यों सोया है? इसपर उन्होंने जवाब दिया कि भगवान् (खुदा) से शून्य तो मुझे कोई स्थान ही नहीं दिखायी पड़ता, जिधरको मैं पैर करूँ।

यह सिद्धान्त है कि भगवान् सर्वत्र व्याप्त हैं, तब सब जगह भगवान्‌के रहते हुए भी उनके रूपों और नामोंमें ऊँच-नीच-भाव और राग-द्वेष रखें तो ठीक नहीं। साधकोंको सावधानी रखनी चाहिये कि उनके जो इष्ट हैं, उनसे असावधानी न हो, परंतु और नामोंसे भी द्वेष नहीं रखें।

यह जो निर्गुण ब्रह्म है वह हमारे भगवान्‌का ही प्रकाश है, अपने इष्टमें श्रद्धा रखनी चाहिये, परंतु भगवान्‌के ही इष्टके सब रूप हैं। यह जान लेनेसे परस्पर घृणा-द्वेष नहीं होता, यह मान लेनेसे दूसरेके इष्टसे जो भगवान्‌के ही रूप हैं, द्वेष नहीं होता।

जो वस्तु साधनाका प्राण और सिद्धिका मूल है, वह है श्रद्धा। भगवान् कहते हैं कि बिना श्रद्धाके जो कार्य करते हैं, वह असत्य है और वह नहीं होता। श्रद्धा जीवन है। जिसमें हमारी श्रद्धा होगी वह काम फल देगा—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

बिना श्रद्धाके सिद्धि नहीं होगी। चाहे हम भगवान्‌के गुण गावें, लीला सुनें, परंतु सबमें श्रद्धा होनी चाहिये, फिर हम भगवान्‌को जहाँ चाहें वहीं मिल जायँगे। अगर कोई चाहे कि कोयलेकी खानमें सोना मिल जाय तो यह असम्भव है, परंतु यह बात भगवान्‌में नहीं घटती, वे पूर्ण हैं और श्रद्धासे सब जगह मिल सकते हैं, चाहे जिस मार्गसे चलें। श्रद्धा होनेसे भगवान् मिल सकते हैं, श्रद्धासे ही क्रमशः उन्नति होते-होते उनका विग्रह दीखने लगता है। भावमें, आचरणमें उसकी भावना आने लगती है। जैसे हम सूर्यके सामने बैठें और उसका ताप और प्रकाश न मिले यह असम्भव है। इसी प्रकार भगवान्‌की उपासना करनेसे भावोंमें शुद्धि न आये यह असम्भव है।

अपने इष्टके पूजन और ध्यानमें श्रद्धासे लगा रहे। उन्नति करते-करते जब भगवान् मिल जायँगे तब जान जायँगे कि भगवान् कैसे हैं। भगवान्‌का वर्णन नहीं हो सकता। वह अनिर्वचनीय है। यह सत्य है, भगवान् हमको अपने आप जना देंगे। जहाँतक हो सके सारे कार्य उसकी प्राप्तिके लिये करने चाहिये। अन्तमें इष्टकी सिद्धि होगी।

प्रायश्चित्त, तप, दान, व्रत आदि जितने भी पापनाशक साधन हैं— श्रीकृष्णका स्मरण सबसे श्रेष्ठ है। श्रीहरिके एक बारके स्मरणमात्रसे ही सारे पाप-ताप, सारी नरक-यन्त्रणाएँ निर्मूल हो जाती हैं।

प्रणवोपासना

(पं॰ श्रीहरिदत्तजी शर्मा, शास्त्री, वेदान्ताचार्य)

अन्तःकरणके तीन दोष हैं—मल, विक्षेप और आवरण। शुभ कर्मोंसे मलका, उपासनासे विक्षेपका तथा ज्ञानसे आवरणका दोष नष्ट होता है। चित्तकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जब चित्त क्षिप्त, मूढ़ या विक्षिप्त रहता है, तब लौकिक या पारलौकिक कोई भी, कैसा भी कार्य सिद्ध नहीं होता, एकाग्र या निरुद्ध चित्तसे ही सब कार्य ठीक-ठीक हो सकते हैं। यह सब एकाग्रचित्तका ही फल है जो शंकरभगवत्पाद, पाणिनि, गौतम आदि महर्षियोंने अद्भुत ग्रन्थोंका निर्माण किया। इस चञ्चल चित्तको अवस्थित करनेमें प्रणव ब्रह्मपाशका काम करता है। श्रीगौडपादाचार्य महाराजने लिखा है कि—

युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥

'प्रणवमें चित्तको स्थिर करे, प्रणव ही निर्भय ब्रह्मका स्वरूप है। प्रणवोपासकके हृदयमेंसे भय, शंका, अरति आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।' श्रुति भी कहती है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

ब्रह्म चार प्रकारका है—शुद्ध, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट्। माया तथा मायाकार्योपाधिरहित शुद्ध 'ब्रह्म' कहलाता है। मायोपहित 'ईश्वर' है, अपञ्चीकृत भूतकार्यरचित समष्टि भूत सूक्ष्मशरीरोपहित 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है तथा पञ्चीकृत भूतकार्यरचित समष्टि भूत स्थूलशरीरोपहित 'विराट्' पुरुष कहलाता है, इसी प्रकार जीव भी चार प्रकारका है—जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—इन चार-चार अवस्थाओंवाला है तथा जो जीव अवस्थाभेदसे वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ और अव्यवहार्य नाम धारण करता है। ओङ्कारमें भी चार मात्राएँ हैं—अ, उ, म् और अव्यवहार्य। इसका चिन्तन निम्नलिखित प्रकारसे करे—विश्व, वैश्वानर और अकार मात्राकी एकताका ध्यान करे। परमात्माका विश्वरूप, जीवात्माका वैश्वानररूप तथा अकार मात्रा यह एक ही हैं। इसी प्रकार हिरण्यगर्भ, तैजस और उकारकी एकताका चिन्तन करे। ईश्वर, प्राज्ञ और मकारकी एकताका ध्यान करे। अनन्तर शुद्धचिद्रूप, आत्म-चिद्रूप और ओङ्कारके अव्यवहार्यरूपकी एकताका ध्यान करे। इस ध्यानयोगके द्वारा ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। सुरेश्वराचार्यने लिखा है कि—

अकारमात्रं विश्वः स्यादुकारस्तैजसः स्मृतः।
प्राज्ञो मकार इत्येवं परिपश्येत् क्रमेण तु॥
अकारं पुरुषं विश्वमुकारे प्रविलापयेत्।
उकारं तैजसं सूक्ष्मं मकारे प्रविलापयेत्॥
मकारं कारणं प्राज्ञं चिदात्मनि विलापयेत्॥

जिस प्रकार स्वर स्वतन्त्र होते हैं, उसी प्रकार अ और उ दोनों स्वतन्त्र हैं तथा मायावाचक म् परतन्त्र है, क्योंकि व्यञ्जन है।

ओङ्कारका माहात्म्य

योगशास्त्रानुसार ओङ्कारोपासनाका बड़ा माहात्म्य है। महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं कि—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

अर्थात् ओङ्कार-भावनासे व्याधिस्त्यान-संशयादि ग्यारह प्रकारके अन्तराय तथा पाँच प्रकारके विक्षेप (दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास और प्रश्वास) नष्ट हो जाते हैं।

प्रणवकी चौथी मात्रा अमात्र है—वह प्रपञ्चोपशम, शिव तथा अद्वैत है। अतएव अव्यवहार्य है—इसीलिये किन्हीं-किन्हीं साधकोंको यह भ्रम हो जाता है कि ओङ्कारकी चतुर्थ मात्रा नहीं होती, पर यह बात नहीं है, क्योंकि चौथी मात्रा नादरूप है—वह स्वर, व्यञ्जन-संघातके अनुरणनसे ही लक्षित होती है।

भगवान् सर्वसमर्थ होते हुए भी व्याकुल हृदयकी करुण पुकार सहनेमें असमर्थ हो जाते हैं और बाध्य होकर उन्हें प्रकट होना ही पड़ता है। भूमितलमें भगवान्‌के अवतारका यही प्रधान कारण है।

साधकोंके प्रति—

मनकी चञ्चलता कैसे मिटे ?

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

आजकल यह बड़ी शिकायत रहती है कि मन नहीं लगता, मन बहुत चञ्चल है! अतः मनको रोकनेके लिये, मनकी चञ्चलता मिटानेके लिये एक बहुत बढ़िया उपाय बताया जाता है।

आप अध्ययन करें कि मनमें क्या आता है? मनमें विशेषरूपसे बीती हुई बातोंकी याद आती है। बीती हुई बातें चाहे बालकपनकी हों, चाहे अभी एक क्षण पहलेकी हों, वह सब भूतकाल है। भूतकालमें जो बातें सुनीं, देखीं, पढ़ीं, विचारमें आयीं, उन बातोंकी याद आती है। ऐसे ही कुछ भविष्यकी बातें भी याद आती हैं कि हमें वह काम करना है, वहाँ जाना है, उससे मिलना है, इतना धंधा करना है आदि। इस तरह भूतकी और भविष्यकी बातें याद आती हैं। इस चिन्तनको मिटानेके लिये बहुत तरहकी युक्तियाँ और उपाय हैं। उनमें सबसे बढ़िया उपाय है कि मनमें जो भी याद आये, वह अब है ही नहीं—ऐसा समझकर उसकी उपेक्षा कर दें और उससे तटस्थ हो जायँ अर्थात् वर्तमानमें उससे हमारा सम्बन्ध है ही नहीं—यह दृढ़ विचार कर लें। यह सीखनेकी बात नहीं है, प्रत्युत अनुभव करनेकी बात है।

भूतकालका सर्वथा अभाव है। जैसे उस कालका अभाव है, ऐसे उस कालकी (बीती हुई) घटनाओंका भी अभाव है। बीती हुई घटनाओंमें दो तरहकी बातें हैं। एक हमने भोगोंको भोगा और एक हमने ऐसे ही देख लिया, सुन लिया, पढ़ लिया और छोड़ दिया। अतः मनोराज्यके दो भेद बताये गये हैं—मन्द और तीव्र। बिना भोगे हुए जो भोग याद आते हैं, वह मन्द मनोराज्य है और भोगे हुए जो भोग याद आते हैं, वह तीव्र मनोराज्य है। भोग जितना ही आसक्तिपूर्वक, लगनपूर्वक भोगा है, उतना ही उसका स्मरण ज्यादा होता है और जल्दी नहीं मिटता*। मधुसूदनाचार्यके 'भक्तिरसायन' ग्रन्थ (१।५)में आया है—

कामक्रोधभयस्नेहहर्षशोकदयाऽऽदयः ।
तापकाश्चित्तजतुनस्तच्छान्तौ कठिनं तु तत्॥

'काम, क्रोध, भय, स्नेह, हर्ष, शोक, दया आदि भाव चित्तरूपी लाखको तपाकर द्रवित करनेवाले हैं। भावरूपी उष्णताके शान्त होनेपर चित्तरूपी लाख ज्यों-की-त्यों कठोर हो जाती है।'

लाख कठोर होती है, पर तापक द्रव्य मिल जाय तो वह पिघल जाती है। मोम भी थोड़ा-सा ताप लगनेपर पिघल जाता है। यदि उसके ऊपर रंग लगाकर दबायें तो उसपर थोड़ा-सा रंग बैठ जाता है, पर नखसे उतारनेपर वह रंग उतर जाता है। अगर एक कटोरीमें मोम डालकर उसको आगपर रख दें और उसमें रंग डाल दें तो वह रंग मोममें एकदम मिल जाता है। मोम ठंडा होनेपर भी वही रंग दीखता है। ऐसे ही जिन भोगोंको भोगनेमें, जिन घटनाओंमें हमारा चित्त ज्यादा पिघला है, हम उसमें ज्यादा तल्लीन हुए हैं, उनका रंग हमारे मनमें बैठा हुआ है। अतः उनकी याद ज्यादा आती है। भूतकालमें हमने जो भोग भोगा है, वह अब बिलकुल नहीं है; परंतु वह पिघले हुए चित्तमें बैठ गया है, इसलिये वह बड़ी तेजीसे आता है। रागपूर्वक, आसक्तिपूर्वक भोगा गया भोग कई वर्ष बीतनेपर भी ज्यों-का-त्यों दीखता है। ज्यों-का-त्यों दीखनेपर भी वह भूतकालमें ही है, अभी तो वह है ही नहीं! यह उसको हटानेकी बहुत बढ़िया युक्ति है। इसलिये आप इसका अनुभव करें कि वह अभी नहीं है। यह बिलकुल शंकारहित

---

* सांसारिक भोगोंको बाहरसे भी भोगा जा सकता है और मनसे भी। बाहरसे भोग भोगना और मनसे उनके चिन्तनका रस (सुख) लेना—दोनोंमें कोई फर्क नहीं है। बाहरसे रागपूर्वक भोग भोगनेसे जैसा संस्कार पड़ता है, वैसा ही संस्कार मनसे भोग भोगनेसे अर्थात् मनसे भोगोंके चिन्तनमें रस लेनेसे पड़ता है। भोगकी याद आनेपर उसकी यादसे रस लेते हैं तो कई वर्ष बीतनेपर भी वह भोग ज्यों-का-त्यों (ताजा) बना रहता है। अतः भोगके चिन्तनसे भी एक नया भोग बनता है! इतना ही नहीं, मनसे भोगोंके चिन्तनका सुख लेनेसे विशेष हानि होती है। लोक-लिहाजसे, व्यवहारमें गड़बड़ी आनेके भयसे मनुष्य बाहरसे तो भोगोंका त्याग कर सकता है, पर मनसे भोग भोगनेमें बाहरसे कोई बाधा नहीं आती। अतः मनसे भोग भोगनेका विशेष अवसर मिलता है।

पक्की बात है कि वह घटना अभी नहीं है, वह वस्तु अभी नहीं है, वह क्रिया अभी नहीं है, वह संग अभी नहीं है। हम उस घटना आदिको मिटाना चाहते हैं, चित्तको ठीक करना चाहते हैं। परंतु उस घटना आदिको मिटानेसे वह नहीं मिटेगी। चित्तको ठीक करनेसे वह ठीक नहीं होगा। उसको मिटानेकी, ठीक करनेकी चेष्टा करना तो उसको सत्ता देकर दृढ़ करना है। वास्तवमें वह अभी है ही नहीं। जब वह है ही नहीं, तो फिर चञ्चलता क्या रही? आश्चर्यकी बात है कि जो नहीं है, उसीसे हम दुःखी हो रहे हैं! जिसका अभाव है, उसीसे हम भयभीत हो रहे हैं!

काम, क्रोध, भय, स्नेह, हर्ष, शोक और दया—ये सात बातें हैं, जिनसे चित्त पिघलता है। इन सबमें मुख्य राग-द्वेष हैं। कामनासे कोई भोग भोगते हैं तो कामना जितनी तेज होती है, उतना ही चित्त ज्यादा पिघलता है और उतना ही वह ज्यादा याद आता है। क्रोध तेजीका आता है तो चित्त ज्यादा पिघलता है। कभी किसी कारणसे जोरसे भय लगता है तो वह भी भीतर बैठ जाता है, जल्दी निकलता नहीं। ऐसे ही किसीसे ज्यादा स्नेह होता है तो चित्त पिघल जाता है। मित्रके मिलनेसे बड़ा हर्ष होता है तो इससे चित्त पिघलता है। कोई मर जाता है और उसका बहुत ज्यादा शोक होता है तो वह चित्तमें बैठ जाता है। थोड़ा शोक हो तो थोड़ा बैठता है। किसीको देखकर दया आ जाती है तो वह भी चित्तमें बैठ जाती है। परंतु 'अभी वह नहीं है'—यह बिलकुल पक्की बात है।

कुत्तेके शरीरमें कहीं घाव हो जाय तो वह उसको जीभसे चाटता है। उसकी जीभकी लारमें एक शक्ति होती है, जिससे वह घाव मिट जाता है। परंतु बंदरके शरीरमें घाव हो जाय तो वह उसको बार-बार कुरेदता है, जिससे वह घाव मिटता नहीं। ऐसे ही दो तरहकी बात है—चाटना और कुरेदना। अभी नहीं है—यह चाटना है और बार-बार याद करना और उसको मिटानेके लिये बार-बार चेष्टा करना कुरेदना है। जैसे किसीका लड़का मर जाय तो वह उसको बार-बार याद करता है कि वह बड़ा अच्छा था, मर गया! उसको याद नहीं आये तो लोग आकर याद करा देते हैं! स्त्रियाँ प्रायः याद करा देती हैं। वे आती हैं और कहती हैं कि छोरा मेरी गोदीमें ऐसे आता था, इस तरहसे मेरेसे चिपक जाता था! वह ऐसा था, ऐसा उसका रूप था, ऐसी उसकी चञ्चलता थी! इन बातोंसे घाव गीला हो जाता है, घाव बढ़ जाता है, शोक बढ़ जाता है और लड़केकी याद ज्यादा आती है। ऐसे ही काम, क्रोध, भय आदिकी बात याद करना घावको बढ़ानेकी रीति है। उसको चाटकर साफ कर दें कि कितना ही काम, क्रोध, लोभ हुआ, मोह-आसक्ति हुई, कैसा ही भोग भोगा, वह वास्तवमें उस समय भी नहीं था, अब तो है ही नहीं '**नासतो विद्यते भावः**।' जिन व्यक्तियोंमें हमारा स्नेह था, मोह था, मित्रता थी, वे मर गये अथवा अलग हो गये। वे कहीं रहते हैं, हम कहीं रहते हैं। अभी न वे व्यक्ति हैं, न वह देश है, न वह समय है, न वह अवस्था है, न वह परिस्थिति है। उसका जितनी दृढ़तासे अभाव मान सकें, मान लें और उसकी उपेक्षा कर दें। न उससे राग करें, न द्वेष करें, प्रत्युत तटस्थ हो जायँ।

प्रश्न—भूतकाल और भविष्यकाल तो अभी नहीं है, पर वर्तमानकाल तो अभी है ही?

उत्तर—वास्तवमें वर्तमानकाल है ही नहीं! भूत और भविष्यकालकी संधिको ही वर्तमानकाल कह देते हैं। पाणिनि-व्याकरणका एक सूत्र है—'**वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा**' (३।३।१३१) अर्थात् वर्तमानसामीप्य भी वर्तमानकी तरह होता है। जैसे, भूतकालको लेकर कहते हैं कि 'मैं अभी आया हूँ' और भविष्यकालको लेकर कहते हैं कि 'मैं अभी जा रहा हूँ'—यह वर्तमानसामीप्य है। वास्तवमें वर्तमान सामीप्यको ही वर्तमान काल कह देते हैं। अगर वर्तमानकाल वास्तवमें होता तो वह कभी भूतकालमें परिणत नहीं होता।

वास्तवमें देश, काल आदि वर्तमान नहीं हैं, प्रत्युत तत्त्व (सत्ता) ही वर्तमान है। तात्पर्य है कि जो प्रतिक्षण बदलता है, वह वर्तमान नहीं है, प्रत्युत जो कभी बदलता नहीं, वही वर्तमान है। वह तत्त्व भूत, भविष्य और वर्तमान—सबमें सदा वर्तमान है, पर उस तत्त्वमें न भूत है, न भविष्य है और न वर्तमान है। कालमें तो सत्ता है, पर सत्तामें काल नहीं है। सत्ता कालसे अतीत है।

वर्तमान (सत्ता-स्वरूप) सबका सदा ही निर्दोष और शान्त है, अतः भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंको छोड़कर उसी निर्दोष और शान्त सत्तामें स्थित होना है अर्थात् उसमें अपनी स्वतःसिद्ध स्थितिका अनुभव करना है। अनुभव होनेपर न मन रहेगा, न मनकी चञ्चलता रहेगी, प्रत्युत सत्तामात्र रहेगी।

साधकके जीवनमें सुख और दुःख

(डॉ० श्रीकन्हैयालालजी शर्मा)

प्रायः सभी सामान्य लोगोंको सुखकी ही कामना रहती है। पुत्रैषणा, वित्तैषणा एवं लोकैषणाएँ उसे अपनी ओर आकृष्ट किये रहती हैं। उनकी प्राप्ति होनेपर वह अपनेको सफल एवं सुखी और प्राप्ति न होनेपर असफल एवं दुःखी मानता है। मानव प्रायः अनुकूलता एवं प्रतिकूलताके संघातोंमें फँसा रहता है और उसके जीवनमें सुख-दुःखका चक्र निरन्तर चलता रहता है। प्रकृतिका सामान्य नियम है निरन्तर परिवर्तित होना। दिन-रात, धूप-छाँह, शीत-उष्ण, प्रकाश-अन्धकार, जन्म-मृत्यु आदिका क्रम निरन्तर चलता रहता है। इसी प्रकार सुख-दुःख भी आते-जाते रहते हैं।

साधकके जीवनमें भी सुख और दुःखका चक्र चलता रहता है, जब कि उसकी कामना यह होती है कि मैं सभी प्रकारके द्वन्द्वोंसे मुक्ति पा लूँ। न मुझे हानिसे दुःख प्रतीत हो और न लाभसे प्रसन्नता। मैं मानापमानसे ऊपर उठकर जीऊँ। यश-अपयश मुझे विचलित न कर सकें। सुख एवं दुःखमें समभाव बनाये रखूँ। उसका यह विश्वास होता है कि मैं तो सर्वसमर्थ गुरु या ईश्वरकी शरणमें हूँ। वह सच्चिदानन्दस्वरूप है, द्वन्द्वातीत है, एक-रस है, शाश्वत है, मायापति है, गुणातीत है और भक्तवत्सल है। अतः उसके सेवकके लिये तो सब कुछ अनुकूल ही होना चाहिये, प्रतिकूलताएँ उसे क्यों हों ? पर ऐसा होता नहीं है। कभी-कभी उसे भी दुःखद परिस्थितियोंमें पड़ा देखा जाता है। तब प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता है ?

सामान्य व्यक्तिकी दृष्टि एवं साधककी मनःस्थितिमें बड़ा अन्तर होता है। हम अपनी दृष्टिसे साधकको विपत्तिग्रस्त देखकर यह मान लेते हैं कि साधक दयनीय स्थितिमें है, पर वस्तुस्थितिका सही निर्णय तो साधकके मनकी गहराईमें पैठकर ही किया जा सकता है। भक्तिमती मीराको मेवाड़ छोड़कर जाते हुए देखकर मेवाड़वासियोंने तो यही समझा होगा कि वह अभागिन है, दुराग्रही एवं मूर्ख है, पर उसकी तबकी मनःस्थिति तो यह थी—

राजा रूठे नगरी राखे, हरि रूठे कहँ जाणां जी।

प्रायः प्रारब्ध-कर्मोंका फल सर्वत्र मिलता ही देखा जाता है। पर ज्ञान या भक्तिद्वारा संचित एवं क्रियमाण पुण्य-पापों तथा यज्ञादि कर्मानुष्ठानोंके फल-भोगसे बचा जा सकता है। प्रारब्ध-कर्मोंका भोग-विषयक सिद्धान्त यह है कि ज्यों-ज्यों साधक साधनामें प्रगति करता है, त्यों-त्यों उसके प्रारब्ध-कर्मोंका भोग त्वरित गतिसे होता है और तीव्र सत्कर्मोंके द्वारा बहुत अंशोंमें दुष्प्रारब्धका निवारण भी हो सकता है। इस प्रकार साधक तीव्र साधनासे एक ही जन्ममें भगवत्प्राप्ति कर सकता है। इसमें प्रारब्ध बाधा नहीं पहुँचा सकता। प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, मयूरध्वज आदिके जीवन-चरित इस सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं, फल-भोगके उपरान्त अपने कर्मोंका क्षय हो जानेपर उन्होंने अपने जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त कर लिया और स्वयं भगवान्ने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिये।

एक सच्चे साधककी अपने इष्ट एवं साधनाके प्रति सच्ची निष्ठा एवं सच्चा विश्वास होता है। इनके बलपर वह संकटोंसे घबड़ाता नहीं, अपितु उसे भगवत्कृपा समझकर अधिक दृढ़ता एवं विश्वाससे अपने मार्गपर अग्रसर होता रहता है। सच्चे साधकको यदि दुःख भी प्राप्त होते हैं तो वह उन्हें परमात्माकी कृपा मानता है, क्योंकि वे परमात्माका स्मरण कराते रहते हैं।

दुःखकी अभिव्यक्ति शिशु तो रोकर करता है, पर बड़ा व्यक्ति उसे शोक, भय, क्रोध, चिन्ता, निराशा आदि नाना भावोंसे प्रकट करता है। दुःख देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं अहंजन्य होता है, जैसे—

(क) देहजन्य—रोग, क्षतिग्रस्तता, बार्धक्य आदि।

(ख) इन्द्रियजन्य—इन्द्रियोंके प्रतिकूल विषयोंका सेवन।

(ग) मनोजन्य—काम, क्रोध, लोभ, आसक्ति, संकल्प-विकल्प, शोक-भय, असंतोष, दरिद्रता आदि।

(घ) बुद्धिजन्य—गलत निर्णय, भ्रम, संशय आदि।

(ङ) अहंजन्य—मेरा-तेरापन (ममता), मानापमान, मद, विषमता, स्वगुण एवं परदोष-दर्शन आदि।

—ये सभी प्रकारके दुःख देहाभिमानियोंको दुःखी करते रहते हैं और वे इनसे मुक्ति पाकर सुखका अनुभव करते हैं। तब उनके लिये दुःखका अभाव सुख बन जाता है। पर साधककी स्थिति सामान्य मनुष्यसे भिन्न होती है। वह तो परम शान्ति एवं परम आनन्दका उपासक होता है और सुख-दुःखको

संतरेके छिलकेके समान समझता है। उसके लिये ग्राह्य छिलके नहीं होते, ग्राह्य होता है उसका रस। रसकी प्राप्तिके लिये उसकी यात्रा आरम्भ होती है और गन्तव्यपर पहुँचकर वह चिर-विश्रान्तिका अनुभव करता है।

देहाभिमानी (सामान्य जन) दुःखको भोगता है और साधक दुःखसे सीखता है, वह उसके प्रभावको ग्रहण करता है। प्रभाव ग्रहण करनेवाला व्यक्ति दुःखमें जीता नहीं है और न सुखकी आशा लगाये रहता है, क्योंकि सुखकी आशा लगाये रहना तो दुःख भोगना ही है। आशामें परम दुःख है और निराशामें परम सुख—**'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।'**

साधक प्राप्त दुःखका भोगी न बनकर उसके कारणकी तलाश करता है। उसका विवेक उसे यह समझाता है कि अमुक-अमुक कारणोंसे उसपर दुःख आ पड़ा है। इससे वह सावधान एवं जागरूक बनता है। दुःखका भोगी न सावधान बन पाता है और न जागरूक। सावधानता एवं जागरूकता साधककी बहुत बड़ी उपलब्धि होती है।

सुख व्यक्तिमें अधिकार-लिप्सा जगाता है। सुखी मनुष्य अधिकृत वस्तुका त्याग नहीं कर सकता। अधिकार-लिप्सासे व्यक्तिके अहंका पोषण होता है और कर्तापनका अभिमान जागता है। दुःखका प्रभाव अहंको गलानेके लिये अमोघ ओषधिका कार्य करता है, जिससे साधककी उन्नति होने लगती है। ऐसा होता है उसमें करुणाके उदयसे, जो दुःखका प्रभाव है। करुणाकी परिणति प्रेममें होती है। तब साधक समस्त लोकसे अभिन्नताका अनुभव करने लगता है। उसकी ममताका द्वार प्राणिमात्रके लिये खुल जाता है। करुणा एवं प्रेम ही सेवामें परिणति पाते हैं। इस प्रकार दुःखके प्रभावसे करुणा, प्रेम, सेवाका विकास होता है।

सुख-भोगी कभी अपनेसे ऊपर उठकर सोच ही नहीं सकता, वह अपनी कामनाओंकी पूर्तिमें ही लगा रहता है। पूर्त-कामना एक अन्य कामनाको जन्म देती है और उसकी पूर्ति की जाती है तो फिर नयी कामना जाग्रत् हो उठती है। इस प्रकार कामना एवं पूर्तिकी अनन्त शृङ्खला बन जाती है। तब कामना-पूर्तिसे प्राप्त सुख भी दुःख ही बन जाता है, क्योंकि काम-कामीको कभी निश्चिन्त विश्रान्तिका अनुभव नहीं करने देता। इसके विपरीत साधकको दुःखके प्रभावसे कामनाके यथार्थ स्वरूपका जब बोध होता है, तब वह समझने लगता है कि कामना-पूर्ति तो दुःखभोग ही है। अतः वह कामनासे निवृत्त होनेकी चेष्टा करता रहता है। भगवान् श्रीकृष्णने कामनाकी क्रिया-शृङ्खलाको अत्यन्त सूक्ष्म ढंगसे समझाया है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २। ६२-६३)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है और अविवेकसे स्मरण-शक्ति भ्रमित हो जाती है तथा स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है एवं बुद्धिके नाश होनेसे वह पुरुष अपने श्रेयसाधनसे गिर जाता है।'

दुःख साधकको यह सोचनेको विवश करता है कि दुःख एवं सुख आते-जाते क्यों हैं? और वह कौन-सा तत्त्व है जो आता-जाता नहीं है? तब वह इस निष्कर्षपर पहुँचता है कि दुःखके जनक सभी करण अनित्य हैं और वे प्रकृतिजन्य हैं। वे सभी अपने-अपने गुण कर्मानुसार प्रवृत्त हैं। जो इनसे भिन्न नित्य तत्त्व है वह है आत्मा। वह सुख-दुःखसे परे चिदानन्दस्वरूप है। फिर वह नित्य-तत्त्वकी प्राप्तिके लिये अधिक तत्परता एवं निष्ठासे अग्रसर होने लगता है। सुखके भोगीके मनमें तो ऐसा विचार आता ही नहीं है। वह सदा माया (प्रकृति) में फँसा रहता है। इस प्रकार दुःख साधकके लिये वरदान बन जाता है। अपने स्वरूपका बोध हो जानेपर साधक सभी प्रकारके दुःखोंसे असम्पृक्त रहता है।

दुःखके प्रभावके फलस्वरूप जिन-जिन करणों (शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं अहं) के द्वारा दुःख प्राप्त होता है, उसके कारणोंको समझ लेनेसे उनका सदुपयोग होने लगता है। तब साधक परिस्थितिका सदुपयोग करने लग जाता है। ऐसे सदुपयोगसे साधकमें विवेककी जागृति होती है।

विवेकको जागृति होते ही सुख-दुःख दोनोंका महत्त्व गिर जाता है। तब वह उनके विकारोंसे भी अप्रभावित रहता है और उसमें समताका उदय होता है। वह दुःख-सुखको समान समझता है।

यह बड़े महत्त्वकी बात है कि भारतीय साधनाका मार्ग सर्वथा निष्कण्टक है। शास्त्रोंमें कहा गया है—**'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'** तथा **'एष निष्कण्टकः पन्था यत्र सम्पूज्यते हरिः'** अर्थात् भगवान्‌की ओर चलनेपर सारी विपत्तियाँ भी सम्पत्तिका रूप धारण कर लेती हैं और सारी विघ्न-बाधाएँ तथा उसके शत्रु भी हितैषी बन जाते हैं। यहाँतक कि विष भी उसके लिये अमृतका रूप धारण कर लेता है—*'गरल सुधा रिपु करइ मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥'* आँख मूँदकर दौड़नेपर भी वह इस पथसे तनिक भी स्खलित, विचलित तथा पतित नहीं होता और एकमात्र श्रेयका मार्ग भी यही है। इसके विपरीत अर्थ-कामकी ओर प्रवृत्ति स्वर्गको नरकके रूपमें और सम्पत्तिको विपत्तिके रूपमें तथा शान्तिको अशान्ति एवं उद्वेगके रूपमें तत्क्षण परिवर्तित कर देती है, क्योंकि इनमें सत्यता है ही नहीं। केवल मायामयता ही है। अतः समस्त शास्त्रोंका एकमात्र यही संदेश है कि सांसारिक आकर्षण विपत्तियोंका केन्द्र है और भगवान्‌का आकर्षण समस्त सुख-सम्पत्तियों और निःश्रेयसका केन्द्र है। अतः सांसारिक आकर्षणसे बचकर साधकको भगवान्‌की ओर ही प्रवृत्त होना चाहिये। फिर सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है।

मृत्युका उपहास करनेवाली हिन्दू-नारी

(श्रीरामनाथजी)

किसी पराधीन देशका किसी स्वतन्त्र और बिलकुल भिन्न परम्परावाले देशके सम्पर्कमें आना भयानक होता है। भारतवर्षके साथ भी यही हुआ है। हजारों वर्षोंसे विदेशी विजेताओंकी एक लंबी श्रेणी हमारे सामने आती रही है। कभी हमने इनका उपहास किया, कभी इनसे आतङ्कित हुए, कभी इनसे पलायन किया और कभी सहयोग। इन सबके बीच धीरे-धीरे आत्मविस्मृतिकी अवस्था हमपर छाती गयी। ब्रिटिश-शासनमें यूरोपके संसर्गसे वहाँकी सभ्यता वैज्ञानिकताकी सहचरी लिये हमारे सामने ऐसे आकर्षकरूपमें उपस्थित हुई कि बस, हम देखते रह गये। आत्मविस्मरणकी जो क्रिया हजारों वर्षों पूर्व ग्रीक-आक्रमणकारियोंके समयसे आरम्भ हुई थी, वह बीसवीं शताब्दीके प्रथम चालीस वर्षोंमें पूर्णताको प्राप्त हो चली। अब हममेंसे अधिकांश शिक्षित जन, स्वतन्त्र चिन्तनका दावा करनेवाले, केवल एक विदेशी विचारधाराका शिथिल, निश्चेष्ट अनुकरण कर रहे हैं और सबसे आश्चर्यकी बात यह है कि यह माननेको तैयार नहीं कि हम अनुकरणशील हैं और स्वतन्त्रचिन्तक कहकर केवल आत्मवञ्चना कर रहे हैं। अपने मूल्याधारोंको छोड़कर हमने विदेशी मूल्याधारोंको बिना स्वतन्त्र परीक्षण और प्रयोगके अपना लिया है। आज शिक्षित समाजमें भारतीय सभ्यताकी परम्पराके प्रति जो उपेक्षा है उसका प्रधान कारण यही है कि हमारे सामने जो विदेशी चीजें, विदेशी विचार-धाराएँ, विदेशी उपकरण आये उनको अपनी कसौटीपर परखनेकी जगह उनकी कसौटीपर हमने अपनेको—अपनी चीजोंको परखना शुरू कर दिया। स्पष्ट है कि उस कसौटीपर हमारी चीजें कच्ची उतरने ही वाली थीं, जैसे हमारी कसौटीपर उनका कच्चा उतरना अनिवार्य था। समाज, देश सबके लिये यह एक भयानक आपत्तिकी बात हमारे यहाँ घटित हो रही है। किसी चीजके बाहरी रूपसे ही हमारा आकर्षण-अपकर्षण होता है। उसके मूलमें पैठकर रूप और नामसे परे रहकर देख सकनेकी शक्तिका लोप होता जा रहा है।

स्त्रियोंकी समस्याओंपर भी विचार करनेकी नवीन शैलीमें यही दोष है। कहा जाने लगा है कि पतिभक्तिका आश्रय स्त्रियोंकी परतन्त्रताको स्थायी रूप देनेके लिये किया गया। इस तरह स्त्रियोंको भड़काया जा रहा है और भड़कानेवाले खुद स्त्रियोंको स्वतन्त्र बनानेकी जगह उन्हें अपने भोग और मनोरञ्जनकी सामग्री बनाते जा रहे हैं। स्त्रियोंके प्रति हमारी भोगमूलक प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं, आजकी नारी और चाटुकारितासे उसे पथभ्रष्ट करनेवाले लोगोंका लक्ष्य है—'रमणीत्व न कि मातृत्व।' अत्यन्त आधुनिकाके लिये पति

केवल जीवनकी सुविधाएँ जुटानेवाला श्रमिक या मनोरञ्जनकी सामग्री मात्र बनकर रह गया है और पतिके लिये आधुनिक नारी उस नयनरञ्जन गुलदस्तेके समान हो गयी है, जो टेबुलोंपर सजाया जाता है और मुरझानेके साथ ही जिसे बदल दिया जाता है।

हम एक गलत विचार-धारा तथा तत्सम्बन्धी अन्य कारणोंसे जब परस्पर इतने कच्चे और व्यापारिक वृत्तिवाले बन रहे हों, जब सभ्यताका सम्पूर्ण प्रवाह अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी हो रहा हो, तब प्राचीन घटनाओं और पातिव्रत तथा सतीत्वकी कथाओंके महत्त्व तथा अन्तर्निहित सत्यको न समझ सकना स्वाभाविक ही है। जब मैं इस अवस्थापर विचार कर रहा हूँ, तब मुझे पातिव्रतका माहात्म्य बतानेवाली एक पुरानी कथा याद आ रही है। उसका स्मरण वैसा ही है जैसे तप्त बालुकाभूमिमें ठंडी बयारका एक झोंका।

मार्कण्डेय-पुराणकी कथा है। प्रतिष्ठानपुरमें कौशिक नामका एक ब्राह्मण रहता था। पूर्वजन्ममें उसने ऐसे पाप किये थे कि उनके कारण इस जन्ममें उसे कोढ़ हो गया था।

इस कोढ़ी और अपाहिजकी पत्नी पतिकी इस शारीरिक व्याधिके कारण बहुत दुःखी हुई, पर उसने अपना धीरज न छोड़ा और अपने कर्तव्यका निर्वाह करनेका निश्चय किया। वह अपने सुखको भूल गयी और सेवाका एक नशा ही उसपर चढ़ गया। वह पतिको देवताके समान पूजती थी। अपने हाथों उसके पाँव धोती, उसके शरीरको मलती, उसे स्नान कराती, कपड़े पहनाती तथा भोजन कराती थी। उसके कफ तथा मल-मूत्रको उठानेमें उसे कोई हिचकिचाहट न होती थी, वह घावोंको धोती और सदा मीठी बातें करके उसे प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करती थी।

स्त्री साक्षात् लक्ष्मी थी। अत्यन्त मृदुता और विनयके साथ वह पतिकी सेवा करती थी, पर पूर्वसंस्कारोंके कारण समझिये या भयानक रोगसे पीड़ित होनेके कारण समझिये, उसके पति कौशिक ब्राह्मणका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा हो गया था। वह क्रोधकी साक्षात् मूर्ति था, सदा अपनी स्त्रीको डाँटा करता था। स्त्री उसकी गालियोंको हँसकर सह लेती थी और इस बीभत्स रूपवाले पतिका सब प्रकार सम्मान करती थी। मजा यह कि यह ब्राह्मण न केवल क्रोधी वरं कामी भी था। यद्यपि उसका शरीर जीर्ण हो रहा था और पाँवसे चलनेमें भी वह असमर्थ था, तो भी वासनाओंसे उसका हृदय पूर्ण था। एक दिन वह अपने घरपर बैठा हुआ था कि देखा, सामनेकी सड़कसे एक अत्यन्त रूपवती वेश्या चली जा रही है। उसकी पत्नी भी वहीं बैठी थी। कौशिक उसपर लुब्ध हो गया। रातको उसने अपनी पत्नीसे कहा—'मुझे उस वेश्याके घर ले चलो, मुझे उसके पासतक पहुँचाओ, वह मेरे मनमें बस रही है। सबेरे मैंने उसे देखा था, अब रात हो गयी है, पर जबसे मैंने उसे देखा है, तबसे वह मेरे मनसे नहीं निकली। यदि वह कोमलाङ्गी, सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनी मुझे न मिलेगी तो तुम मुझे जीता न पाओगी।'

ब्राह्मणकी पत्नी पतिकी बातें सुनकर बड़ी दुःखी हुई। कामातुर पतिके प्रति उसके मनमें घृणा नहीं, बल्कि दुःख और दया उपजी। पर पतिके जीवनकी रक्षा तो उसे करनी ही थी। दुःखी मनसे उसने कमर कसी, साथमें वेश्याको देनेके लिये पर्याप्त धन लिया और चूँकि पति चल नहीं सकता था इसलिये उसे अपने कंधेपर चढ़ाकर वह धीरे-धीरे चली।

पत्नीके कंधेपर चढ़ा हुआ वह ब्राह्मण रास्तेमें शूलकी पीड़ासे कराह रहे माण्डव्य नामक ब्राह्मणको अँधेरेमें चोरके डरसे, जबर्दस्ती अपने साथ ले चला। माण्डव्यको गहरी पीड़ा हो रही थी, इसलिये उसने क्रोध करके कोढ़ी कौशिकसे कहा—

'मैं दुःखी और पीड़ित हूँ, तुम मुझे इस तरह जबर्दस्ती चलाकर व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हो। इसलिये हे पापात्मा, नराधम ! सूर्योदय होते ही तुम मृत्युको प्राप्त होगे, इसमें कोई संदेह नहीं। सूर्यको देखते ही तुम्हारे प्राण छूट जायँगे।'

इस भयङ्कर शापको सुनकर कोढ़ी कौशिक ब्राह्मणकी पत्नी बड़ी दुःखी हुई । बोली— 'यदि ऐसा है तो सूर्यका उदय ही न होगा।'

इस पतिव्रताके वचन कैसे झूठे होते ? सूर्यका उदय बहुत दिनोंतक नहीं हुआ। लगातार रात रहने लगी। इससे देवतालोग डर गये और चिन्ता करने लगे कि सूर्योदय न होनेसे सब पुण्य-कार्य बंद हो जायँगे—न वेदपाठ होगा, न तर्पण होगा, न यज्ञ होगा, न होम होगा और संसारका नाश हो जायगा। दिन-रातकी व्यवस्था बिना महीनों और ऋतुओंका

भेद भी जाता रहेगा। मास और ऋतुके न होनेसे दक्षिणायन और उत्तरायणका भेद भी लुप्त हो जायगा। दक्षिणायन-उत्तरायणके ज्ञान बिना वर्षका ज्ञान फिर कैसे होगा? पतिव्रताके कहनेसे सूर्यका उदय नहीं हो रहा है। सूर्योदयके न होनेसे स्नानादि क्रियाएँ नहीं हो सकतीं, न अग्निका आधान हो सकता है। इससे यज्ञादिका अभाव हो जायगा। जब चर-अचर समस्त संसार अन्धकारमें डूब जायगा, तब सब प्राणी नष्ट हो जायँगे।

देवता रात-दिन इसी प्रकारकी चिन्ता, चर्चा करते थे। अन्तमें वे ब्रह्माके पास गये। ब्रह्माने उनकी बात सुनकर कहा—'पतिव्रताकी महिमासे सूर्य नहीं उदय हो रहा है। सूर्यके उदय न होनेसे मनुष्योंकी और तुम सब देवताओंकी हानि हो रही है। इसलिये यदि तुम चाहते हो कि सूर्यका उदय हो तो जाकर अत्रि मुनिकी पतिव्रता पत्नी अनसूयाको प्रसन्न करो।'

तदनुसार देवोंने जाकर अनसूयाको विनयसे प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर उन्होंने कहा कि 'जो वर चाहो माँगो।' तब देवोंने कहा कि 'हम चाहते हैं कि जैसे पहले दिन होता था, वैसे फिर होने लगे।'

अनसूया बोलीं—'पतिव्रताकी महिमा नष्ट नहीं हो सकती। उसका वचन झूठा नहीं हो सकता। तथापि मैं उस साध्वीको किसी तरह मनाकर फिरसे दिन होनेका प्रबन्ध करूँगी, जिससे पूर्ववत् रात-दिन होने लगे और उसका पति भी शापके कारण नाशको प्राप्त न हो।'

देवोंको आश्वासन देकर अनसूया उस पतिव्रताके पास गयीं और कुशल-मङ्गल पूछती हुई बोलीं—'हे कल्याणी! तुम अपने पतिकी सुखदायिनी हो। तुम्हारा समय सुखसे तो बीत रहा है? मैं समझती हूँ कि तुम अपने पतिको समस्त देवोंसे अधिक मानती हो। मैंने पति-सेवासे बड़े-से-बड़े फल प्राप्त किये हैं। पति-सेवासे स्त्रीको सम्पूर्ण इच्छित फल प्राप्त हो सकते हैं। जिस पुण्यको पुरुष लोग बड़े दुःखसे उपार्जित करते हैं, उसका आधा फल स्त्रियाँ केवल पति-सेवाके कारण ही पा जाती हैं। स्त्रियोंके लिये न अलग यज्ञ है, न अलग श्राद्ध है, न अलग व्रत-उपवास है। पति-सेवासे ही उनको इच्छित लोक प्राप्त होते हैं। इसलिये साध्वी! तुम पतिकी सेवामें सदा मन लगाया करो, क्योंकि पति ही स्त्रीके लिये परम गति है।'

अत्रिपत्नी अनसूयाकी ये हितकर बातें सुनकर उस स्त्रीने उनका यथोचित सत्कार किया, फिर बोली—'मैं यह जानती हूँ कि स्त्रीके लिये पतिके समान कोई दूसरी गति नहीं है। पतिके प्रति प्रेम इहलोक और परलोक दोनोंके लिये उपकारी है। पतिकी प्रसन्नतासे स्त्री दोनों लोकोंमें सुख पाती है, क्योंकि स्त्रीका देवता पति ही है। आप कृपापूर्वक मेरे यहाँ पधारी हैं। कृपा करके आज्ञा कीजिये कि मैं अथवा मेरे पति आपके लिये क्या कर सकते हैं?'

अनुकूल अवसर पाकर अनसूयाने कहा—'तुम्हारे कहनेसे सूर्यका उदय नहीं होता, इससे दिन और रातका भेद न होनेसे देवोंके सब सत्कर्मोंका लोप हो गया है। इसलिये देवगण पहलेकी तरह फिर रात और दिनकी व्यवस्था चाहते हैं। मैं इसीलिये तुम्हारे पास आयी हूँ। ध्यानसे मेरी बात सुनो—दिन न होनेसे यज्ञादि नहीं हो सकते, यज्ञ न होनेसे देवता तृप्त नहीं होते। दिन न होगा तो सब धार्मिक कार्योंका उच्छेद हो जायगा। यज्ञादि धार्मिक कार्योंके नष्ट हो जानेसे वृष्टिका लोप हो जायगा और वृष्टिके न होनेसे संसारका ही नाश हो जायगा। इसलिये हे देवि! धैर्यसे जगत्‌का इस विपत्तिसे उद्धार करो। कृपाकर प्रसन्न हो, जिसमें सूर्य फिर पहलेकी तरह उदय होने लगें।'

ब्राह्मणी बोली—'हे देवि! माण्डव्यने क्रोध करके मेरे पतिको शाप दे दिया है कि सूर्योदय होनेपर तुम विनाशको प्राप्त होगे। तब मैं क्या करूँ?'

अनसूया बोलीं—'यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारे कहनेसे तुम्हारे पतिका शरीर फिर पहले-जैसा कर सकती हूँ। मैं भी पतिव्रताओंकी महिमाका आराधन करनेवाली हूँ, इसीलिये तुम्हारा सम्मान करती हूँ।'

पतिव्रताकी स्वीकृतिपर तपस्विनी अनसूयाने आधी रातको अर्घ्य देकर सूर्यका उपस्थान किया। अनसूयाके उपस्थान करनेपर खिले हुए रक्तकमलकी तरह लाल-लाल सूर्यका बड़ा मण्डल हिमालयकी चोटीपर उदित हुआ। सूर्य-दर्शनके साथ ही ब्राह्मणीका पति प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। ब्राह्मणीने गिरते हुए पतिको हाथोंसे पकड़ लिया।

अनसूयाने कहा—'हे देवि! तुम चिन्ता मत करो।

देखो, पतिकी सेवासे मैंने ऐसी शक्ति पायी है, जैसी दीर्घकालतक तपस्या करनेसे भी नहीं मिल सकती। यदि पतिके समान दूसरे पुरुषको मैंने कभी न देखा हो तो मेरे इस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगसे रहित होकर फिर युवा हो जाय और पत्नीसहित सौ सालतक जिये। यदि मैं सदा मन, वचन और कर्मसे पतिकी आराधनामें लगी रहती हूँ तो मेरी इस पति-भक्तिके प्रभावसे यह ब्राह्मण फिर जीवित हो जाय।'

इसपर वह ब्राह्मण नीरोग और युवा होकर उठ खड़ा हुआ और अपनी प्रभासे अजर-अमर देवताकी तरह गृहको प्रकाशमान करने लगा। आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, देवोंने वाद्य बजाये और प्रसन्न होकर अनसूयासे कहा—'हे हमारा कल्याण करनेवाली अनसूया! तुमने सूर्यका फिरसे उदय कराके बड़ा भारी काम किया है। तुम वर माँगो।'

अनसूया बोलीं—'यदि ब्रह्मासहित सब देव मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं चाहती हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश मेरे पुत्र हों और मैं पतिसहित क्लेशसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये योगको प्राप्त करूँ।'

देवगण 'एवमस्तु' कहकर और अनसूयासे आज्ञा लेकर चले गये।

यह एक मार्मिक कथा है। इसमें असङ्गतियाँ भी हैं, पर मुझे उनसे प्रयोजन नहीं। कथाके मूलमें जो तत्त्व है, उसीसे मेरा काम चल जाता है। इसमें नारी कहीं पतिके भोगकी उपेक्षित, पीड़ित और अपदार्थरूपमें नहीं आयी है। क्या इसमें कहीं भी उस अपदार्थ नारीकी गन्ध है जो अशक्ता, महिमाहीना पुरुषकी वासनाकी दासीके रूपमें दिखायी पड़ती है? निश्चय ही पत्नी पतिमें केन्द्रित है, पर यहाँ पति उसके लिये धर्मके एक प्रतीकके रूपमें है। उसकी आस्थाने पतिमें देवत्वकी प्राण-प्रतिष्ठा की है— ठीक वैसे ही, जैसे एक साधारण वस्तुमें प्रेम और भावनाके समावेशसे अपूर्व शक्ति पैदा हो जाती है। स्पष्ट ही यहाँ नारी केवल शरीर-भोगको लेकर जीवनके स्वप्नोंकी रचना करनेवाली नहीं है, यहाँ वह मानव-जीवनके रूपाकर्षणसे ऊपर उठी अपनी महिमासे पुरुषका—समाजका गौरव बढ़ानेवाली मानव-जीवनके अमृत प्रेममें छकी हुई है। यह वह नारी है जिसने मृत्युका उपहास किया है, जिसने क्षणिक जीवनको अमरताका आश्वासन प्रदान किया है? कौन कब ऐसी नारीकी उपेक्षा कर सका है?

भारतवर्षके साहित्यमें इस प्रकारके जितने चित्र मिलते हैं, सबमें एक ही सत्यकी बार-बार घोषणा की गयी है। और वह सत्य है शरीरकी अधोगामी वासनाओंको पददलित करके समाज और धर्मके ऊपर प्रकाशकी दीपशिखा-सी उठती नारीकी महिमामयी मूर्ति—यह नारी जो कुण्ठित नहीं है, विचलित नहीं है, अशक्त नहीं है, अपदार्थ नहीं है, जिसे पुरुषकी कृपा और दयाकी आवश्यकता नहीं और जिसकी उपेक्षा होते ही पुरुषका पतन हुआ है और समाजमें भयङ्कर विस्फोट हुए हैं।
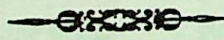
वीर्यसाधन

(ज्योतिर्विद् कविराज पं० श्रीविश्वरूपजी आयुर्वेदशास्त्री 'साहित्यरत्न')

ऋषि-महर्षियोंने साधनोंमें वीर्यको ही सर्वोत्कृष्ट साधन कहा है; क्योंकि यह शरीरकी स्थितिका कारण है और साथ ही ब्रह्मप्राप्तिका साधन भी। जिस-किसी साध्यके जो कोई भी साधन हैं, उन सबमें सर्वप्रथम वीर्यसाधन ही आवश्यक है। सब ऐहिक और पारलौकिक कार्य इसी साधनसे सधते हैं। जितने धुरन्धर कार्यकर्ता, शूरवीर योद्धा, प्रतिभा-सम्पन्न कवि और लेखक हुए, उन सबकी शक्तिका रहस्य ब्रह्मचर्य ही है। प्राणोंकी स्थिरता बिन्दुकी स्थिरतासे ही होती है और प्राणोंकी स्थिरताके बिना कोई महत्कार्य नहीं हो सकता। जबतक वीर्य स्थिर है, तबतक प्राणक्षयका भय नहीं। श्रीधन्वन्तरिजी ब्रह्मचर्यका उपदेश करते हुए बतलाते हैं—

मृत्युव्याधिजरानाशि पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महद्बलं सत्यमेव वदाम्यहम्॥

'यह वीर्य-रक्षणरूप ब्रह्मचर्य मृत्यु, व्याधि और जराको हटानेवाला अमृतमय परमौषध है, यह महान् बल है, यह मैं सत्य ही कहता हूँ।'

शान्तिं कान्तिं स्मृतिं ज्ञानमारोग्यं चापि संततिम्।
य इच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह॥

'जो कोई शान्ति, कान्ति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और संतति चाहता हो, वह महान् धर्मस्वरूप ब्रह्मचर्यका पालन करे।'

हमारे शरीरके अंदर जो सर्वोत्तम धातु है वह वीर्य ही है। इसकी रक्षापर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर करता है। हम जो अन्न खाते हैं, वह पाकस्थलीमें जाता है और उसका रस बनता है। रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेदा, मेदासे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे एक मासमें जाकर शुक्र या वीर्य बनता है। वीर्यका एक बिन्दु रक्तके चालीस बिन्दुओंका सार होता है। वीर्यकी रक्षासे प्राणकी पुष्टि होती है। हमारे शरीरमें जितने यन्त्र हैं, उनमें स्नायु, पाकस्थली, हृदय और मस्तिष्क—ये चार मुख्य यन्त्र हैं। वीर्यनाशसे इन यन्त्रोंपर बड़ा कठिन प्रहार होता है और उनकी शक्ति क्षीण होती है। स्नायुओंके दुर्बल होनेसे उनकी वीर्यधारणशक्तिका ह्रास होता है और सामान्य काम-संकल्पसे, लेशमात्र भी चाञ्चल्यसे वीर्य नष्ट होने लगता है। इस धातु-दुर्बलतासे अनेक भीषण रोगोंकी उत्पत्ति होती है। अपानवायुके साथ प्राणवायुका, प्राणवायुके साथ वीर्यका सम्बन्ध है और इस तरह अपानवायुके साथ ही वीर्यका सम्बन्ध है। अपानके ठीक होनेसे अन्नका परिपाक ठीक तरहसे होता है। इससे अजीर्णादि विकार नहीं होते। परंतु वीर्यके नाश या चाञ्चल्यसे अपानकी क्रिया बिगड़ जाती है, इससे खाया हुआ अन्न नहीं पचता, शरीर रोगोंका घर बन जाता है। जिस उष्णताके होनेसे अन्नका पाचन होता है, उसके न रहनेसे मनुष्य उत्साहहीन हो जाता है। यह सामान्य वीर्यरक्षणकी बात हुई। परंतु ब्रह्मचर्यका इतना ही अर्थ नहीं है और न वीर्यका स्थूलार्थ ही उसका सम्पूर्ण अर्थ है। ब्रह्मचर्यका पूर्णार्थ वेदज्ञानको पाना, सच्चिदानन्द ब्रह्ममें समाना है। और वीर्यको भी 'भर्ग' (तेज) कहा गया है, **'वीर्यं वै भर्गः'** जो वेदके तत्त्वज्ञानका दर्शक और ब्रह्मका प्रकाशक प्रदीप है। संसारके आधिभौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकारके महत्कार्योंके मूलमें ब्रह्मचर्यका ही पालन है। वीर्यके बिना कोई भी साधना वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे बीजके बिना वृक्ष नहीं हो सकता। वीर्यको ब्रह्मबीज कहा गया है। 'ब्रह्मचर्य' शब्दका 'ब्रह्म' पद वीर्य और ब्रह्मके बीच अभेद्य सम्बन्ध बता रहा है और इस अभेदकी रक्षा ब्रह्मचर्यके पालनसे होती है। ब्रह्मचर्य केवल अविवाहित रहना ही नहीं है, ब्रह्मप्राप्ति अथवा पुत्रोत्पत्ति दोनों ही वीर्यके सदुपयोग हैं। गृहस्थ भी नियमितरूपसे संयमपूर्वक केवल ऋतुकालमें ही गमन करनेवाला हो तो वह ब्रह्मचारी ही कहलाता है। वानप्रस्थ-आश्रम भी ब्रह्मचर्य-साधनके लिये है। इस आश्रममें भी स्त्री और पुरुष एक साथ ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए रह सकते हैं।

मनुष्यका मन ही मनुष्यके बन्ध या मोक्षका कारण है। भगवत्प्राप्तिके जितने भी साधन हैं, सब पहले मनको शान्त करनेवाले हैं। मनके उत्कट वेग ही दुःखके कारण हैं। ब्रह्मचर्यसे हीन साधकका मन सदा अशान्त रहता है। ऐसे साधक अपना साधन बीचमें ही समाप्त कर देते हैं या रोगाक्रान्त होकर अपनी मृत्युका आवाहन करते रहते हैं अथवा पागल होकर उभयभ्रष्ट हो जाते हैं। साधनक्षेत्रमें सर्वप्रथम यही साधन होनेसे इसमें कोई वैसी कठिनाई नहीं है। सात्त्विक आहार होना चाहिये—कन्द, मूल, फल, दूध, दही, घृत अथवा शुद्ध अन्न परिमित और नियतरूपमें ग्रहण करे, शुद्ध और पवित्र वस्त्र पहने, जहाँतक हो सके एकान्तमें रहे, सत्-शास्त्रोंका अध्ययन या श्रवण करे, युक्त निद्रा ले, शुद्ध जलवायुका सेवन करे। कड़ुआ, तीता, बासी, अपवित्र, दुष्ट-दृष्टिगत भोजन न करे और ताम्बूल, हास्य, गीत, शृङ्गार, स्त्रियोंके चित्र और कामशास्त्र—इन सबसे बचे। जो कुछ कामोत्तेजक पदार्थ हैं उनका परित्याग कर दे। स्त्री, पुरुषोंका एक साथ मिलकर भजन करना भी ब्रह्मचर्यव्रतके लिये अच्छा नहीं है। इन नियमोंका पालन करनेवाला पुरुष ब्रह्मचर्यकी सत्तासे ऊर्ध्वगामी प्रणवध्वनिके साथ ब्रह्मरन्ध्रको भेदकर ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।
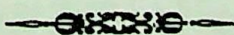
जिनकी चेतनाके स्पर्शमात्रसे यह विश्व चेतन हो जाता है; किंतु यह विश्व जिन्हें चेतनताका दान नहीं कर सकता—स्पर्श नहीं कर सकता, जो इसके सो जानेपर अर्थात् प्रलय हो जानेपर भी जागते रहते हैं, जिनको यह जान नहीं सकता, परंतु जो इसको जानते हैं—वही परमात्मा हैं। यह सम्पूर्ण विश्व और इस विश्वमें रहनेवाले समस्त चर-अचर प्राणी— सब उन परमात्मासे ओतप्रोत हैं, भरे-पूरे हैं। इसलिये संसारके किसी भी पदार्थमें मोह न करके उसका त्याग करते हुए ही जीवन-निर्वाहमात्रके लिये भोग करना चाहिये। तृष्णाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। —श्रीमद्भागवत

महापापसे बचो

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[संख्या ४, पृ० सं० ५१८ से आगे]

एक धर्मशास्त्र होता है और एक अर्थशास्त्र। धर्मशास्त्र मनुष्यको कर्तव्यका ज्ञान कराता है, जिससे मनुष्यके लोक-परलोक सुधरते हैं। अर्थशास्त्र दृष्ट फलका वर्णन करता है। जो मनुष्य कामनाके वशीभूत होकर दृष्ट फल (धन-सम्पत्ति, पुत्र, स्वर्ग आदिकी प्राप्ति) के लिये अर्थशास्त्रकी आज्ञा मानकर पाप करते हैं, वे पापके भागी होते हैं। कारण कि अर्थशास्त्रमें कामना—सकामभावकी मुख्यता होती है और कामना सब पापोंकी जड़ है (गीता ३। ३७)। जो सौ यज्ञ करके इन्द्र (शतक्रतु) बनता है, उसके द्वारा भी शास्त्रके अनुसार (वैध) हिंसा होती है। उस हिंसाके पापका फल भोगना ही पड़ता है। इसीलिये इन्द्रपर आफत (प्रतिकूल परिस्थिति) आती है, उसकी हार होती है, वह डरके मारे भागता-फिरता है, छिपता है, उसके हृदयमें जलन होती है। अतः हिंसाका फल मिलता ही है, कोई हिंसा माने चाहे न माने। तात्पर्य है कि जहाँ धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रके वचन हों, वहाँ धर्मशास्त्रके ही वचन मानने चाहिये; क्योंकि अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र श्रेष्ठ है, बलवान् है*।

आज सरकार गर्भ गिरानेको पाप नहीं मानती, पर न माननेसे पाप नहीं लगेगा—यह बात नहीं है। पाप तो लगेगा ही, कोई माने चाहे न माने। जैसे पहले राजालोग निषिद्ध काम करनेके लिये प्रजाको आज्ञा देते थे, प्रेरणा करते थे तो उसका पाप राजा और प्रजा दोनोंको लगता था (उदाहरणार्थ, राजा वेनने स्वयं भी निषिद्ध काम किये और प्रजासे भी करवाये), ऐसे ही आज सरकार गर्भपात आदि निषिद्ध काम करनेकी प्रेरणा करती है तो सरकारको भी पाप लगेगा और जनता (निषिद्ध काम करनेवाले) को भी।

प्रश्न—रामचरितमानसमें आता है—***'समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥'*** (बाल० ६९। ८)। अतः जिनको राज्य मिला है, बड़ा पद मिला है, वे (राजा, सरकार) समर्थ हैं, तो फिर उनको पाप कैसे लगेगा?

उत्तर—वे समर्थ नहीं हैं। समर्थ वे हैं, जिनमें दूसरोंके दोषोंको नष्ट करनेकी शक्ति है। जैसे—सूर्य गंदगीका शोषण कर लेता है; अपवित्रको पवित्र, अशुद्धको शुद्ध बना देता है; सबके जलीय भागको खींच लेता है; समुद्रके खारे जलको खींचकर मीठा जल बना देता है। परंतु ऐसा करनेपर भी सूर्य खुद कभी अशुद्ध, अपवित्र नहीं होता। अग्नि सब गंदगीको जला देती है, सबका भक्षण कर जाती है, सबको शुद्ध कर देती है, पर वह अशुद्ध नहीं होती, उसको दोष नहीं लगता। गङ्गाजी गंदे जलको पवित्र कर देती हैं, पापोंका नाश कर देती हैं, पर उनको दोष नहीं लगता। तात्पर्य है कि अशुद्धको शुद्ध बना देना, उसके दोषोंको नष्ट कर देना और स्वयं ज्यों-का-त्यों ही रहना—यह समर्थपना है। जिसको राज्य, वैभव मिल गया, वे समर्थ हैं—यह बात है ही नहीं।

सांसारिक पद, अधिकार, वैभव आदि मिलनेसे मनुष्य समर्थ नहीं होता; क्योंकि उसकी सामर्थ्य पद, अधिकार आदिके अधीन है। वह तो पद, अधिकार आदिका गुलाम है, दास है, पराधीन है; अतः वह खुद समर्थ कैसे हुआ? तात्पर्य है कि जो मिली हुई चीजसे अपनेको समर्थ मानता है, वह वास्तवमें असमर्थ ही है, क्योंकि उसमें जो सामर्थ्य दीखती है, वह उस चीजकी है, खुदकी नहीं है। जो वास्तवमें समर्थ होते हैं, उनकी सामर्थ्य किसीके अधीन नहीं होती; जैसे—सूर्य, अग्नि और गङ्गाजीकी सामर्थ्य किसीके अधीन नहीं है, प्रत्युत स्वयंकी है। अतः राज्यके, पदके मदमें आकर जो पाप करते-करवाते हैं, वे अपनी सामर्थ्यका महान् दुरुपयोग करते हैं, जिसका दण्ड उनको भोगना ही पड़ेगा। उनकी सामर्थ्य पापोंको दूर करनेवाली न होकर पाप करानेवाली है। इसलिये वास्तवमें जो समर्थ नहीं है, उस सरकारको समर्थ मानकर उसकी प्रेरणासे मनुष्यको कभी पाप नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—सरकारका आदेश होनेसे यदि डॉक्टरलोग गर्भपात, नसबंदी-ऑपरेशन करते हैं तो क्या उन्हें महापाप लगेगा?

*स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः। अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः॥

उत्तर—उनको तो अवश्य ही महापाप लगेगा। लोभ पापका बाप है ही। थोड़े-से लोभके लिये वे कितने जीवोंकी हत्या कर देते हैं! ऐसा घृणित कार्य करके, महापाप करके कमाये हुए पैसोंका अन्न खानेसे उनकी बड़ी दुर्दशा होगी।

शास्त्रमें आया है कि यदि अन्नपर गर्भपात करानेवालेकी दृष्टि भी पड़ जाय तो वह अन्न अभक्ष्य (न खानेयोग्य) हो जाता है—

भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया।
पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च॥

(मनुस्मृति ४। २०८)

'गर्भहत्या करनेवालेका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ और कुत्तेका स्पर्श किया हुआ अन्न न खाये।'

नौकरीमें अपना समय देकर, काम करके पैसे लिये जाते हैं, अपना धर्म, कर्तव्य, सत्कर्म देकर पैसे नहीं लिये जाते। पाप, अन्याय, हत्या, हिंसा आदि करके पैसे लेना तो कोरा पाप है। अतः यदि कोई मालिक पाप, अन्याय करनेके लिये कहे तो नौकरको चाहिये कि वह मालिकसे नम्रतापूर्वक कह दे कि 'मैं आपके काममें घंटा-दो-घंटा समय अधिक दे सकता हूँ, पर अपने धर्मका नाश करके पाप, हिंसा करनेमें मैं बाध्य नहीं हूँ; आप नौकरीपर रखें, चाहे न रखें, आपकी मरजी।'

एक सज्जनने गर्भपात, नसबंदी आदि नहीं किया तो उसको नौकरीसे निकाल दिया गया। उसने मुकदमा किया और उसमें वह जीत गया। अतः उसको पुनः नौकरीपर रखना पड़ा। अगर सरकारका ऐसा कानून है तो वह ईसाई, मुसलमान, पारसी आदि सबके लिये होना चाहिये, केवल हिन्दुओंके लिये ही नहीं। किसी एक जातिपर, एक वर्णसमुदायपर ज्यादती करना, उसको पाप करनेके लिये बाध्य करना और पाप करनेका कानून बनाना सरकारके लिये उचित नहीं है।

प्रश्न—किसीने भूलसे, अनजानमें नसबंदी-ऑपरेशन करवा लिया तो अब वह क्या करे?

उत्तर—डॉक्टरोंका कहना है कि ऑपरेशनमें केवल नस ही काटी गयी हो तो वह पुनः जोड़ी जा सकती है; परंतु जिसका गर्भाशय ही निकाल दिया गया हो, उसका कोई इलाज नहीं है। अतः केवल नसबंदी ही की गयी हो तो उसको फिर ठीक करवा लेना चाहिये। ऐसा काम हुआ भी है और जिन्होंने ऐसा किया है, उनके फिर संतान भी हुई है।

इस प्रकार नसबंदी ठीक करवा ले, अपना पुरुषत्व और स्त्रीत्व ठीक कर ले और पहले किये हुए अपराधका पश्चात्ताप करे तो उसके हाथसे पितरोंको पिण्ड-पानी मिल सकता है। अगर ब्रह्मचर्यका पालन करे तो तेज बढ़ेगा, ओज-शक्ति बढ़ेगी, उत्साह बढ़ेगा।

प्रश्न—किसीने अनजानमें गर्भपात करवा लिया तो अब वह उसका क्या प्रायश्चित्त करे?

उत्तर—उसको चाहिये कि वह एक वर्षतक प्रतिदिन एक लाख रामनामका जप करे। परंतु जो जानकर गर्भपात करती है, वह अगर इस प्रकार नामजप करे तो भी उसके पापका प्रायश्चित्त नहीं होगा। उसको तो पापका दण्ड भोगना ही पड़ेगा। कारण कि जो नाम महापापोंका नाश करनेवाला है, उस नामके सहारे कोई पाप करता है तो नाम उसकी रक्षा नहीं करता। अतः उसके पाप नष्ट नहीं होते, प्रत्युत वज्रलेप हो जाते हैं। पहले तो बिना नामके वह पाप करनेसे डरता था, पर अब वह नामके सहारे पाप करनेसे नहीं डरता तो यह नामका महान् दुरुपयोग है, नामापराध है, जिसका दण्ड उसको भोगना ही पड़ेगा।

प्रश्न—परिवार-नियोजन नहीं करेंगे तो जन-संख्या बहुत बढ़ जायगी, जिससे लोगोंको अन्न नहीं मिलेगा, फिर लोग जीयेंगे कैसे?

उत्तर—यह प्रश्न सर्वथा ही अयुक्त है, युक्तियुक्त नहीं है। कारण कि जहाँ मनुष्य पैदा होते हैं, वहाँ अन्न भी पैदा होता है। भगवान्‌के यहाँ ऐसा अँधेर नहीं है कि मनुष्य पैदा हों और अन्न पैदा न हो।

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।
तुलसी चिंता क्यों करे, भज ले श्रीरघुबीर॥

माँके स्तनोंमें दूध पहले पैदा होता है, बच्चा पीछे पैदा होता है। इसका क्या पता? जब बच्चा पैदा होता है, तब माताएँ स्तनोंमेंसे पुराना दूध निकालकर बच्चेको नया दूध पिलाती हैं। हम भी कहीं जाते हैं तो वहाँ व्यवस्था पहले होती है, हम पीछे पहुँचते हैं। ऐसा नहीं होता कि व्याख्यान पहले

होगा, पंडाल पीछे बनेगा। बारात ठहरनेकी जगह पहले तैयार की जाती है या बारात आनेके बाद? कोई उत्सव होता है तो उंसकी व्यवस्था पहले होती है। ऐसा नहीं होता कि पहले उत्सव हो, फिर व्यवस्था हो। ऐसा देखा भी जाता है और वैज्ञानिकोंका भी कहना है कि जहाँ वृक्ष अधिक होते हैं, वहाँ वर्षा अधिक होती है। जहाँ वृक्ष नहीं होते, वहाँ वर्षा कम होती है। ऐसे ही मनुष्य अधिक होंगे तो अन्न भी अधिक पैदा होगा। अन्नमें कमी कैसे आयेगी? क्या मनुष्य वृक्षोंसे भी नीचे हैं?

प्रश्न—आज अन्न इतना महँगा क्यों हो गया है?

उत्तर—विचारपूर्वक देखें कि जबसे परिवार-नियोजन होता गया, तबसे अन्न भी महँगा होता गया, कम पैदा होता गया। जब मनुष्योंकी संख्या कम होगी तो फिर अन्न अधिक क्यों पैदा होगा? तात्पर्य है कि परिवार-नियोजनकी प्रथा चलनेसे ही यह दशा हुई है।

आज 'मांस खाओ, मछली खाओ, अंडा खाओ'—ऐसा प्रचार किया जाता है, तो फिर वर्षा और खेती क्यों हो? कारण कि मांस खानेसे पशु नहीं रहेंगे तो उनके लिये घासकी जरूरत नहीं और मनुष्य मांस खायेंगे तो उनके लिये अन्नकी जरूरत नहीं, फिर निरर्थक घास और अन्न पैदा क्यों हों!

जब मनुष्य अधिक हों और वस्तुएँ कम हों, तब महँगाई होती है। वस्तुएँ तभी कम होती हैं, जब मनुष्य काम न करें, आलस्य-प्रमाद करें। आज भी यही दशा है। लोग काम तो कम करते हैं और खर्चा ज्यादा करते हैं, इसीलिये इतनी महँगाई हो रही है। काम कम करनेसे वस्तुएँ कम पैदा होंगी ही। अतः महँगाईका कारण जन-संख्याका अधिक होना नहीं है, प्रत्युत मनुष्योंमें अकर्मण्यता, आलस्य, प्रमाद आदि दोषोंका बढ़ना ही है। सरकारकी अव्यवस्था भी इसमें कारण है।

प्रश्न—हमें काम-धंधा नहीं मिलता तो हम क्या करें?

उत्तर—काम-धंधा न मिलनेमें कारण है कि मनुष्य जिस क्षेत्र एवं समुदायमें जाता है, वहाँ वह अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन नहीं करता, प्रत्युत आलस्य-प्रमादमें अपना समय बरबाद करता है। वास्तवमें कामकी कमी नहीं है, प्रत्युत काम करनेवालोंकी कमी है। काम बहुत है, पर ईमानदारीसे तत्परतापूर्वक काम करनेवाले कम हैं। कोई ईमानदार आदमी हो और उसको काम न मिले—ऐसा हो ही नहीं सकता। आलस्य, प्रमाद, काम करनेकी नीयत न होना आदि दोष होनेपर ही उसको काम नहीं मिलता।

प्रश्न—आज महँगाईके जमानेमें अधिक संतान होगी तो उनका पालन-पोषण आदि कैसे करेंगे?

उत्तर—आप विचार करें कि आवश्यकता ही आविष्कारकी जननी है; अतः जन-संख्या बढ़ेगी, संतान अधिक होगी तो उसके पालन-पोषणकी व्यवस्था भी जरूर होगी। पहले जमानेमें हमारी यह देखी हुई बात है कि जिस वर्ष टिड्डियाँ अधिक आती थीं, उस वर्ष खेती अच्छी होती थी, अकाल नहीं पड़ता था। टिड्डियोंके आनेपर लोग उत्साहसे कहते थे कि इस बार वर्षा अधिक होगी; क्योंकि इतने जन्तु आये हैं तो उनके भोजनकी व्यवस्था (खेती) भी अधिक होगी। भगवान्‌की जो व्यवस्था पहले थी, वह आज भी जरूर होगी। आप परिवार-नियोजन करते हैं और व्यवस्थाका भार अपनेपर लेते हैं, इसीका यह परिणाम है कि आज व्यवस्था करनेमें मुश्किल हो रही है। अतः आप अपनेपर भार मत लो और अपने कर्तव्यमें तत्पर रहो तो आपके और परिवारके पालन-पोषणकी व्यवस्था भगवान्‌की तरफसे जरूर होगी।

पहले राजा-महाराजाओंके यहाँ हजारों संतानें पैदा होती थीं और उनका पालन-पोषण भी होता था। जैसे, राजा सगरके साठ हजार पुत्र थे। राजा अग्रसेनके अनेक पुत्र हुए, जिनके वंशज आज अग्रवाल कहलाते हैं। धृतराष्ट्रके सौ पुत्र थे। इस प्रकार एक-एक आदमीके सैंकड़ों, हजारों संतानें हुई हैं। कोई जानना चाहे तो मैं बता सकता हूँ कि गाँव-के-गाँव एक-एक आदमीकी संतानोंसे बसे हुए हैं।

यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि जो वास्तवमें विरक्त संत होते हैं, जो अपने निर्वाहकी परवाह ही नहीं करते, चेष्टा ही नहीं करते, उनके निर्वाहकी व्यवस्था जनता करती है। जो अपने निर्वाहके लिये चेष्टा करते हैं, उनकी अपेक्षा उन विरक्त संतोंके निर्वाहका प्रबन्ध अच्छा होता है।

आप थोड़ा विचार करें; जो मुसलमान भाई हैं, वे चार-चार विवाह करते हैं। हमने सुना है कि एक भाईकी डेढ़ सौ संतानें हुईं; और एक भाईके उन्नीस बालक हुए, उनमेंसे दो मर गये और सत्रह मौजूद हैं। इस प्रकार वे प्रायः

परिवार-नियोजन नहीं करते, फिर भी उनकी संतानका पालन-पोषण हो रहा है। क्या केवल हिन्दू ही अन्न खाते हैं, कपड़े पहनते हैं, पढ़ाई करते हैं ? दूसरे लोग क्या अन्न नहीं खाते, कपड़े नहीं पहनते, पढ़ाई नहीं करते ? मुसलमान भाई तो कहते हैं कि संतान होना खुदाका विधान है, उसको बदलनेका अधिकार मनुष्यको नहीं है। जो उसके विधानको बदलते हैं, वे अनधिकार चेष्टा करते हैं। वास्तवमें परिवार-नियोजन करनेवालोंकी जन-संख्या कम हो जाती है। अतः मुसलमानोंने यह सोचा कि परिवार-नियोजन नहीं करेंगे तो अपनी जन-संख्या बढ़ेगी और जन-संख्या बढ़नेसे अपना ही राज्य हो जायेगा; क्योंकि वोटोंका जमाना है। इसलिये वे केवल अपनी संख्या बढ़ानेकी धुनमें हैं। परंतु हिन्दू केवल अपनी थोड़ी-सी सुख-सुविधाके लिये नसबंदी, गर्भपात आदि महापाप करनेमें लगे हुए हैं। अपनी संख्या तेजीसे कम हो रही है—इस तरफ भी उनकी दृष्टि नहीं है और परलोकमें इस महापापका भयंकर दण्ड भोगना पड़ेगा—इस तरफ भी उनकी दृष्टि नहीं है। केवल खाने-पीने, सुख भोगनेकी तरफ तो पशुओंकी भी दृष्टि रहती है। अगर यही दृष्टि मनुष्यकी भी है तो यह मनुष्यता नहीं है।

हिन्दू-धर्ममें मनुष्य-जन्मको दुर्लभ बताया गया है और कल्याणको सुगम बताया गया है। अतः कोई जीव मनुष्य-जन्ममें, हिन्दू-धर्ममें आ रहा हो तो उसको रोकना नहीं चाहिये। अगर आप उसको रोक दोगे तो वह जीव विधर्मियोंके यहाँ पैदा होगा और आपके धर्मका, हिन्दुओंका नाश करेगा; क्योंकि जीवका ऋणानुबन्ध केवल एकके साथ नहीं होता, प्रत्युत कइयोंके साथ होता है।

कौरव और पाण्डव—दोनोंकी नौ-नौ अक्षौहिणी सेनाएँ थीं। परंतु एक अक्षौहिणी नारायणी सेना और एक अक्षौहिणी शल्यकी सेना कौरवोंकी तरफ चली जानेसे कौरवोंकी सेना पाण्डवोंकी सेनासे चार अक्षौहिणी बढ़ गयी अर्थात् पाण्डवोंकी सेना सात अक्षौहिणी और कौरवोंकी सेना ग्यारह अक्षौहिणी हो गयी ! इसी प्रकार हिन्दूलोग नसबंदी-ऑपरेशन आदिके द्वारा संतति-निरोध करेंगे तो जो संतान उनके यहाँ पैदा होनेवाली थी, वह विधर्मियोंके यहाँ पैदा हो जायगी। जैसे, अबतक हिन्दुओंके यहाँ लगभग बारह करोड़ शिशुओंका जन्म रोका गया है* । अतः वे बारह करोड़ शिशु गोघातक विधर्मियोंके यहाँ जन्म लेंगे तो विधर्मियोंकी संख्या हिन्दुओंकी संख्यासे चौबीस करोड़ बढ़ जायगी। विधर्मियोंकी संख्या बढ़ेगी तो फिर वे हिन्दुओंका ही नाश करेंगे। अतः हिन्दुओंको अपनी संतान-परम्परा नष्ट नहीं करनी चाहिये और गोघातकोंकी संख्या बढ़ाकर गोहत्याके पापमें भागीदार नहीं बनना चाहिये।

प्रश्न—संतान कम होगी तो उनका पालन-पोषण भी अच्छा होगा और परिवार भी सुखी रहेगा; अतः परिवार-नियोजन करनेमें हानि क्या है ?

उत्तर—कम संतानसे परिवार सुखी रहेगा—यह बात नहीं है। जिनकी संतान नहीं है, वे भी दुःखी हैं; जिनकी संतान कम है, वे भी दुःखी हैं; और जिनकी अधिक संतान है, वे भी दुःखी हैं। हमने बिना संतानवालोंको भी देखा है, थोड़ी संतानवालोंको भी देखा है और अधिक संतानवालोंको भी देखा है तथा उनसे हमारी बातें हुई हैं। वास्तवमें संतानका ज्यादा-कम होना सुख-दुःखमें कारण नहीं है। जो कम संतान होनेके कारण सुखी हो, ऐसा आदमी संसारमें एक भी हो तो बताओ। संसारमें क्या, सृष्टिमें भी नहीं है ! दुःखका कारण है—भोगपरायणता—'**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।**' (गीता ५। २२)। भोगपरायण आदमी कभी सुखी हो सकता ही नहीं, सम्भव ही नहीं। जो भोगपरायण है, उसकी संतान चाहे ज्यादा हो, चाहे कम हो, चाहे बिलकुल न हो, वह तो दुःखी रहेगा ही।

विवाहके बाद आरम्भमें स्त्रीका पुरुषके प्रति और पुरुषका स्त्रीके प्रति विशेष आकर्षण रहता है, इसलिये पहली जो संतान होती है, वह केवल भोगेच्छासे ही होती है। भोगेच्छासे पैदा हुई संतान प्रायः अच्छी नहीं होती, भोगी होती है। आज जितना भी अच्छे भावोंका प्रचार हुआ है, समाजका सुधार हुआ है, वह सब अच्छे व्यक्तियोंके द्वारा ही हुआ है। क्या

---

* जिन व्यक्तियोंने संतति-निरोध किया है, उनकी आगे होनेवाली कई संतानोंका भी स्वतः निरोध हुआ है। अगर प्रत्येक व्यक्तिकी आगे होनेवाली दो या तीन संतानोंका भी निरोध माना जाय तो यह संख्या चौबीस या छत्तीस करोड़तक पहुँच जाती है !

भोगी, लोलुप, चोर, डकैत व्यक्तियोंके द्वारा समाजका कभी सुधार हुआ है ? और क्या उनके द्वारा समाजका सुधार होनेकी सम्भावना है ? अतः संतान कम होनेसे प्रायः भोगी संतान ही पैदा होगी, जिससे समाजका पतन ही होगा।

प्रश्न—भगवान् राम और भरत आदिने भी परिवार-नियोजन किया था—***'दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए।'*** और ***'दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे।'*** (मानस उत्तर० २५।३-४)। अतः अब भी दो ही संतान रखें तो क्या हानि है ?

उत्तर—किसी भी रामायणमें यह नहीं आया है कि श्रीरामने नसबंदी की थी, सीताजीने ऑपरेशन किया था। यह नसबंदी-ऑपरेशन आदि तो हमारे देखते-देखते अभी शुरू हुआ है। यह विदेशी काम है, हमारे देशका काम नहीं है। राम, भरत आदि खुद भी चार भाई थे। भगवान् कृष्णकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंमें प्रत्येकके दस-दस पुत्र और एक-एक कन्या हुई थी। किसी-किसीकी स्वाभाविक ही संतान कम होती है और किसी-किसीकी स्वाभाविक ही संतान ज्यादा होती है।

प्रश्न—संतान अधिक पैदा करेंगे तो उसके पालन-पोषणमें ही सारा समय चला जायगा, फिर भगवान्का भजन कैसे करेंगे ?

उत्तर—हमारा आशय यह नहीं है कि आप संतान अधिक पैदा करें, प्रत्युत हमारा आशय है कि आप कृत्रिम उपायोंसे संतति-निरोध करके थोड़े-से सुखके लिये अपने शरीर, बल, उत्साह आदिका नाश मत करें। खेती तो करेंगे, हल तो चलायेंगे, पर बीज नहीं बोयेंगे—यह कोई बुद्धिमानी है ? **'हतं मैथुनमप्रजम्'**—संतान पैदा न हो तो स्त्रीका संग करना व्यर्थ है। अतः हमारा आशय यही है कि आप इन्द्रियोंके गुलाम न बनें, उनके परवश न रहें, प्रत्युत स्वतन्त्र रहें।

प्रश्न—अधिक संतान चाहते नहीं और संयम हो पाता नहीं, ऐसी अवस्थामें क्या करें ?

उत्तर—ऐसी बात नहीं है। अगर आप संयम करना चाहते हैं तो संयम अवश्य हो सकता है। मैंने बहुत समय पहले 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' नामक एक पुस्तक पढ़ी थी। उसके लेखक शिवानन्द नामके व्यक्ति थे। उन्होंने उस पुस्तकमें लिखा था कि 'मैं विवाहित हूँ; परंतु दोनोंने (मैंने और स्त्रीने) सलाह करके ब्रह्मचर्यका पालन किया, जिससे मुझे बहुत लाभ हुआ। वह लाभ सबको हो जाय, इसलिये मैंने यह पुस्तक लिखी है।' एक माताजीने हमें सुनाया कि हमारे पड़ोसमें एक जैन परिवार था। रोज रातमें उनके बोलनेकी आवाज आती थी। एक दिन मैंने उनसे पूछा कि आपलोग रातमें बातें करते हैं, सोते नहीं हैं क्या ? उन्होंने अपनी बात सुनायी कि विवाहके पहले ही हम दोनोंमेंसे एकने कृष्णपक्षमें और एकने शुक्लपक्षमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी सौगन्ध ले ली थी। अब तीसरा पक्ष कहाँसे लायें ? अतः एक कमरेमें रहनेपर भी हम आपसमें धर्मकी चर्चा किया करते हैं। तात्पर्य है कि आप गृहस्थमें रहते हुए संयम कर सकते हैं। आप उत्साह रखें, हिम्मत मत हारें कि हमारेसे संयम नहीं होता। आप संयम नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? हिम्मत रखनेसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है—

हिम्मत मत छाँड़ो नराँ, मुख ते कहताँ राम।
हरिया हिम्मत से किया, ध्रुव का अटल धाम॥

अतः उत्साह रखें, भगवान्का भरोसा रखें और उनसे प्रार्थना करें कि 'हे नाथ ! हम संयम रखनेका नियम लेते हैं, आप शक्ति दो।' इस प्रकार आप जितने तत्पर रहेंगे, भगवान्का भरोसा रखेंगे, उतना ही आपको अलौकिक चमत्कार देखनेको मिलेगा, करके देख लें।

पहले जमानेमें नसबंदी-ऑपरेशन आदि नहीं होते थे। उस जमानेमें लोग संयम रखते थे तो अब भी संयम रखना चाहिये। वर्तमानमें जो संयम आदि गुणोंको, दैवी-सम्पत्तिको अपनेमें लानेमें कठिनताका अनुभव होता है, उसका कारण यह है कि पहले असंयम आदिका, आसुरी-सम्पत्तिका स्वभाव बना लिया है।

विचार करें कि सत्य बोलनेवाला व्यक्ति है, उससे कहा जाय कि हम आपको एक हजार रुपये देते हैं, आप झूठ बोल दें तो वह झूठ नहीं बोलेगा। परंतु जो झूठ-सचका खयाल नहीं रखते, उनसे कहा जाय कि हम आपको पाँच रुपये देंगे, आप सच्ची बात बोल दें तो वे सच्ची बात बोल देंगे। जो मांस नहीं खाते, उनसे कहा जाय कि हम आपको एक हजार रुपये देंगे, आप मांस खाओ तो वे मर जायेंगे, पर मांस नहीं खायेंगे। परंतु जो मांस खाते हैं, उनसे कहा जाय कि आप

मांस-मछली मत खाओ, और जगह भोजन न करके केवल हमारे यहाँ ही शाकाहार भोजन करो तो हम आपको रोज एक रुपया देंगे तो वे महीनेभर आपके यहाँ भोजन कर लेंगे। किसीको मदिरा आदिका व्यसन नहीं है, उनको भय, लोभ आदि दिखाकर मदिरा पीनेके लिये कहा जाय तो वे मदिरा नहीं पी सकते। परंतु जिनको मदिरा पीनेका व्यसन है, वे भी संत-महात्माओंके संगमें आकर, नीरोगता आदिके लोभमें आकर व्यसन छोड़ देते हैं। तात्पर्य है कि सच बोलना, मांस-मदिराका त्याग करना तो सुगम है, पर झूठ बोलना, मांस-मदिराका सेवन करना कठिन है। उसी प्रकार संयमका त्याग करना कठिन है, संयम करना कठिन नहीं है। यह अनुभवसिद्ध बात है।

एक बात और है कि संयम स्वतःसिद्ध है और असंयम कृत्रिम है, बनावटी है। स्वतःसिद्ध बात कठिन क्यों लगती है—इसपर थोड़ा ध्यान दें। जो लोग संयमका त्याग करके अपना जीवन असंयमी बना लेते हैं, उनके लिये फिर संयम करना कठिन हो जाता है। अगर पहलेसे ही संयमित जीवन रखा जाय तो दुर्व्यसनोंका, दुर्गुणोंका त्याग होनेसे मनुष्यमें शूरवीरता, उत्साह रहता है, शान्ति रहती है। संयम करनेसे जितनी प्रसन्नता, नीरोगता, बल, धैर्य, उत्साह रहता है, उतना असंयम करनेसे नहीं रहता। आप कुछ दिनोंके लिये अच्छे संगमें रहें और संयम करें तो आपको इसका अनुभव हो जायगा कि संयमसे कितना लाभ होता है! संसारमें जितने रोग हैं, वे सब प्रायः असंयमसे ही होते हैं। प्रारब्धजन्य रोग बहुत कम होते हैं। संयमी पुरुषोंको रोग बहुत कम होते हैं। संयमी पुरुष बेफिक्र रहता है, जब कि असंयमी पुरुषमें चिन्ता, भय आदि बहुत ज्यादा होते हैं। जैसे, असंयमी रावण जब सीताको लानेके लिये जाता है, तब वह डरके मारे इधर-उधर देखता है—***'सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥'*** (मानस, अरण्य० २८। ९)। परंतु संयमी सीता राक्षसोंकी नगरीमें और राक्षसोंके बीच बैठकर भी निर्भय है! अकेली और स्त्री-जाति होनेपर भी उसको किसीसे भय नहीं है। यहाँतक कि वह रावणको भी अधम, निर्लज्ज आदि कहकर फटकार देती है—***'सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥'*** (मानस, सुन्दर० ९। ९)।

हमारे शास्त्रोंमें ब्रह्मचर्यका बड़ा माहात्म्य है और विदेशी सज्जनोंने भी इसका आदर किया है। उन्होंने कहा है कि जीवनभरमें पुरुष एक ही बार अपनी स्त्रीका संग करे। एक बारमें न रह सके तो वर्षमें एक बार करे। वर्षमें एक बार भी न रह सके तो महीनेमें एक बार संग करे अर्थात् केवल ऋतुगामी बने। इसमें भी न रह सके तो अपने कफनका कपड़ा खरीदकर रख ले! कारण कि बार-बार संग करनेसे आयु जल्दी नष्ट होती है और मनुष्य जल्दी (अल्पायुमें) मरता है। ऐसे तो अल्पायुमें मरनेके अनेक कारण हैं, पर उनमें वीर्य-नाश करना खास कारण है। अतः दीर्घायु होनेके लिये, स्वास्थ्यके लिये, नीरोग रहनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करना बहुत आवश्यक है। सिंह जीवनभरमें केवल एक ही बार सिंहनीका संग करता है*। अतः उसमें वीर्यकी रक्षा अधिक होनेसे विशेष ओजबल रहता है, जिससे वह अपनेसे अत्यन्त बड़े हाथीको भी मार देता है। परंतु जो मनुष्य बार-बार स्त्रीका संग करता है, उसमें वह ओजबल नहीं आता, प्रत्युत निर्बलता आती है। ओजबल ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही उत्पन्न होता है।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे बड़े-बड़े रोग आक्रमण नहीं करते। ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालोंकी संतान तेजस्वी और नीरोग होती है। परंतु ब्रह्मचर्यपालन न करनेवालोंकी संतान तेजस्वी और नीरोग नहीं होती; क्योंकि बार-बार संग करनेसे रज-वीर्यमें वह शक्ति नहीं रहती। भोगासक्तिसे जो संतान पैदा होती है, वह भोगी और रोगी ही होती है। अतः धर्मको प्रधानता देकर ही संतान उत्पन्न करनी चाहिये, जिससे संतान धर्मात्मा, नीरोग पैदा हो। भगवान्‌ने भी धर्मपूर्वक कामको अपना स्वरूप बताया है—**'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥'** (गीता ७। ११)।

जो केवल शास्त्रमर्यादाके अनुसार संतान-उत्पत्तिके लिये ऋतुकालमें अपनी स्त्रीका संग करता है, वह गृहस्थमें रहता हुआ भी ब्रह्मचारी माना जाता है। परंतु जो केवल भोगेच्छा, सुखेच्छासे अपनी स्त्रीका संग करता है, वह पाप करता है।

---

* सिंह गमन, सज्जन बचन, कदलि फलै इक बार। तिरिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

गीताने विषय-भोगोंके चिन्तनमात्रसे पतन होना बताया है (२। ६२-६३) और कामको सम्पूर्ण पापोंका मूल तथा नरकोंका दरवाजा बताया है (३। ३६, १६। २१)। तात्पर्य है कि भोगेच्छासे अपनी स्त्रीका संग करना नरकोंका दरवाजा है; पापोंका, अनर्थोंका कारण है।

पक्का विचार होनेपर ब्रह्मचर्यका पालन करना कठिन नहीं है। ब्रह्मचर्यका पालन मनुष्यके लिये खास बात है। अगर मनुष्य संयम नहीं करता तो वह पशुओंसे भी गया-बीता है। पशुओंमें गधा, कुत्ता नीच माना जाता है। परंतु वर्षमें एक महीना ही उनकी ऋतु होती है। उस महीनेमें उनकी रक्षा की जाय तो उनका संयम हो जाता है। जैसे, श्रावण मासमें गधेकी, कार्तिक मासमें कुत्तेकी और माघ मासमें बिल्लीकी रक्षा की जाय, उनसे ब्रह्मचर्यका पालन कराया जाय तो उनका संयम हो जाता है। परंतु मनुष्यके लिये बारह महीने खुले हैं, अतः दूसरा कोई उनकी रक्षा नहीं कर सकता, वह खुद ही चाहे तो अपनी रक्षा कर सकता है। इसीलिये शास्त्रोंमें मनुष्यको ब्रह्मचर्य-पालनकी आज्ञा दी गयी है। ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति हो जाती है, महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न—पुरुष तो संयम रखे, पर स्त्री संयम न रखे तो क्या करना चाहिये?

उत्तर—यह बात नहीं है कि स्त्री संयम न रखे। वास्तवमें पुरुष ही स्त्रीको बिगाड़ता है। स्त्रियोंमें काम-वेगको रोकनेकी जितनी शक्ति होती है, उतनी पुरुषोंमें नहीं होती।

अगर पहलेसे ही संयम रखा जाय तो संयम सुगमतासे होता है। भोगवृत्ति ज्यादा होनेपर संयम रखना कठिन हो जाता है। अतः जब कामका वेग न हो, तब स्त्री-पुरुष दोनोंको शान्तचित्त होकर विचार करना चाहिये कि हम अधिक संतान नहीं चाहते तो हमें संयम रखना चाहिये, जिससे हमारा शरीर, स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। ऐसा विचार करके दोनोंको रात्रिमें अलग-अलग रहना चाहिये।

मनुष्य संयम तो सदा रख सकता है, पर भोग सदा नहीं कर सकता—यह स्वतःसिद्ध बात है। अतः संयमके विषयमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिये और गर्भपात, नसबंदी-जैसे महापापसे बचना चहिये।

जबतक यह हिन्दू-समाज गर्भपात-जैसे महापापसे नहीं बचेगा, तबतक इसका उद्धार मुश्किल है; क्योंकि अपना पाप ही अपने-आपको खा जाता है। अगर यह समुदाय अपनी उन्नति और वृद्धि चाहता है तो इस घोर महापापसे, ब्रह्महत्यासे दुगुने पापसे बचना चाहिये। एक भाईने हमें बताया कि गत वर्ष भारतमें लगभग इक्कीस लाख गर्भपात किये गये! ऐसी लोक-परलोकको नष्ट करनेवाली महान् हत्यासे समाजकी क्या गति होगी, इसे भगवान् ही जाने! धर्मपरायण भारतमें कितना धर्मविरुद्ध काम हो रहा है, इसका कोई पारावार नहीं है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर निकलेगा, इसलिये समय रहते चेत जाना चाहिये—

का बरषा सब कृषी सुखानें।
समय चुकें पुनि का पछितानें॥

हमारा उद्देश्य किसीकी निन्दा करना, किसीको नीचा दिखाना है ही नहीं। हमारा यह कहना है कि मनुष्य-शरीरमें आकर कम-से-कम गर्भपात-जैसे महापापोंसे तो बचें।

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(मानस, उत्तर० ४३। ७)

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर० ४४। ६)

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।

(श्रीमद्भा० ११। २। २९)

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।

(श्रीमद्भा० ११। ९। २९)

—इस प्रकार जिस मनुष्य-शरीरको इतना दुर्लभ बताया गया है, उस मनुष्य-शरीरमें जीवको न आने देना, जीवको ऐसा दुर्लभ शरीर न मिलने देना कितना महान् पाप है! ऐसे महापापसे बचो।(पूर्ण)
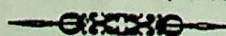
जो कुछ करना चाहते हो, पहलेसे ही उसका ढिंढोरा मत पीटो। काम होनेपर आप ही सब जान जायँगे।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

[पाचन-तन्त्रके रोगोंकी उत्पत्ति एवं चिकित्सा]

(डॉ॰ श्रीशरणप्रसादजी)

[गताङ्क पृ॰-सं॰ ५२० से आगे]

पाचन-तन्त्रकी थकान या क्लान्तिको दूर करनेका उपाय क्या है ? जिस प्रकार आदमी चलते-चलते या दिनभर काम करते-करते थक जाता है, तब उसकी थकान विश्रान्तिसे ही दूर होती है एवं उसमें पुनः शक्तिका संचार होता है, उसी प्रकार थके हुए पाचन-तन्त्रको अथवा उसके प्रत्यङ्गको विश्रान्ति देनेके लिये पाचन-तन्त्रको पाचन-सम्बन्धी कार्यसे आंशिक या पूर्ण-रूपसे कुछ समयके लिये मुक्त रखना चाहिये।

आंशिक विश्राम देना हो तो रसाहार, प्रवाही आहार, शुद्धि-आहार, अल्पाहार आदिका प्रयोग करना चाहिये, जिससे पाचन-कार्यमें थोड़ी ही शक्ति लगे और पाचन-कार्यके अनन्तर बची हुई शक्तिका उपयोग शरीर-शुद्धिके कार्यमें हो सके।

पूर्ण विश्रान्तिके लिये उपवास करना चाहिये, जिससे पाचन-कार्यमें खर्च होनेवाली सम्पूर्ण शक्ति उस ओरसे बचकर शरीर-शुद्धिके कार्यमें लग सके। उपवासरूपी पूर्ण विश्रान्तिसे शरीरके (पाचन-तन्त्रके) थके हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग रसाहार या शुद्धि-आहार आदिकी अपेक्षा शीघ्रतर नीरोग एवं शक्तिमान् बनते हैं।

इसलिये पाचन-तन्त्रकी विश्रान्ति एवं शरीर-शुद्धिकी दृष्टिसे उपवासको प्रथम स्थान प्राप्त है। उसके बाद रसाहार, प्रवाही आहार, शुद्धि-आहार या अल्पाहारका क्रम आता है। रोगीकी शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाको ध्यानमें रखकर ही शुद्धिका माध्यम तथा उसकी अवधि निर्धारित करनी चाहिये।

शुद्धिके माध्यमोंकी संक्षिप्त व्याख्या

१-उपवास—उपवास-कालमें केवल जलपर रहना चाहिये। रोगीको यदि जलसे कुछ अरुचि हो जाय तो जलके स्वादको थोड़ा बदलनेके लिये अथवा उसमें थोड़ी सुगन्ध (खुशबू) लानेके लिये एक गिलास जलमें २-४ बूँद नीबूका रस मिला सकते हैं। उसमें नमक या सोडा मिलाकर पीना हानिकारक है। केवल जल (शुद्ध पानी) पर उपवास करना सर्वोत्तम है।

खुलकर अच्छी भूख लगनेपर ही उपवास तोड़ना चाहिये। उपवासके प्रथम दो-तीन दिनोंतक खाने-पीनेकी पुरानी आदतके कारण जो भुखास (एपिटाइट) लगती है, वह भूख नहीं होती, उसके धोखेसे बचना चाहिये। वह प्रतिदिनकी आदतके अनुसार भोजनके किसी निर्धारित समयपर महसूस होनेवाली इच्छा या अभिलाषामात्र होती है, जो समयके बीत जानेपर आप-से-आप शान्त हो जाती है। छोटे-से-छोटा उपवास तीन दिनका होना चाहिये। उस बीच कोई उभार या कष्ट न हो, तो ५-७ दिनोंका उपवास भी आसानीसे किया जा सकता है। ७ दिनसे अधिक दिनका उपवास किसी कुशल चिकित्सककी देख-रेखमें ही करना उचित है।

२-रसाहार—रसाहारमें यथाशक्य कम-से-कम फलका रस लेनेका प्रयत्न करना चाहिये, जिससे शरीरमें अशक्ति न आने पाये। भूखकी अनुभूति कम या बिलकुल न हो, तो लंबे समयका रसाहार आसानीसे कर सकते हैं। घरेलू वातावरणमें उपवासके बजाय रसाहार करना ठीक रहता है। रसाहार यथासम्भव रसीले फलोंको चूस-चूसकर ही करना स्वास्थ्य तथा पाचनकी दृष्टिसे उत्तम है। चूसनेसे फलके रसमें मुँहकी लार अच्छी तरह मिल जाती है और पेटमें वायु उत्पन्न नहीं होती। परंतु यदि रोगी संतरा या मोसंबी-जैसा फल चूसनेमें भी थकानका अनुभव करता हो, तो उसे रस निकालकर देना चाहिये। रसको धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा, छोटे-छोटे घूँटोंमें अथवा चम्मचसे लिया जाय और प्रत्येक घूँटको तनिक देर मुँहमें रखकर अथवा चबा-चबाकर यह प्रयत्न किया जाय कि लार उसमें मिलती चले, तो लाभ होगा। रसाहारके लिये नीबू, संतरा, मोसंबी, नारियलका पानी, काली द्राक्षा (मुनक्का) या किशमिशका शर्बत या गन्ना चूसना आदि उपयुक्त हैं। इनके अभावमें ताजा गाजरका रस, टमाटरका रस भी लिया जा सकता है।

३-प्रवाही आहार (लिक्विड डायट)—प्रवाही आहारमें रसीले फलोंके रसके अतिरिक्त साग-भाजीका कच्चा रस,

उबाली हुई तरकारियोंका रसा (सूप), मक्खन निकाला हुआ मट्ठा या छाछ, मूँगका पानी आदि लिया जा सकता है।

४-शुद्धि-आहार—शुद्धि-आहारमें सभी प्रकारके फल (केलेको छोड़कर) तथा सभी तरकारियाँ (आलू, शकरकंद, जिमीकंद, सेमकी फली आदिको छोड़कर) उपयोगमें ला सकते हैं। शुद्धिकी दृष्टिसे परवल, दूधी (लौकी), तरोई, गिलका (नेनुआँ), चिचिड़ा, गाजर, टमाटर, चौलाई, मेथी, पालक, बथुआ आदि साग-भाजी अधिक लाभदायक हैं। फलोंमें रसीले फलोंके अलावा पपीता, अमरूद, नासपाती, चीकू आदि हितकर हैं। लेकिन रोगीका झुकाव हमेशा कम मात्राकी ओर होना चाहिये। पेटूपनकी अर्थात् अधिक भक्षण करनेकी आदत सर्वथा त्याज्य है और शुद्धि-आहारके समय तो अत्यधिक हानिकारक, यहाँतक कि प्राणघातक है।

५-अल्पाहार—अल्पाहारमें प्रतिदिनके भोजनकी मात्रा घटाकर लगभग आधी रखें अथवा दोनों समय अन्न न लेकर, एक समय अन्न तथा दूसरे समय फल, सागभाजी (कच्ची तथा पक्की दोनों प्रकारकी) लें। नौकरी-पेशावाले रोगियोंके लिये, जिन्हें छोटी-मोटी तकलीफ (बीमारी या बे-आरामी) हो अल्पाहार अधिक उपयोगी है। लंबी अवधितक योजनापूर्वक अल्पाहार करनेसे जीर्ण (पुराने) रोगोंमें भी आश्चर्यजनक लाभ होता है।

६-पूर्ण आहार—पूर्ण आहार नीरोग होनेपर ही शनैः-शनैः प्रारम्भ करना चाहिये और इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि खूब चबा-चबाकर खाना है तथा पेटको तीन-चौथाई ही भरना है, एक चौथाई खाली रखना है।

बाह्य उपचार

पाचन-तन्त्रके निम्नलिखित बाह्य उपचार अत्यन्त उपयोगी हैं।

१-धूप-स्नान। २-कटि-स्नान (ठंडा, गरम-ठंडा, सौम्य गरम)। ३-शक्तिके अनुकूल टहलना, व्यायाम, आसन आदि। ४-पेटपर (विशेषतः पेडूपर) मिट्टीकी गीली ठंडी पट्टी या मिट्टीका लेप। ५-पेटपर लपेट (एब्डोमिनल वेट् पैक)। ६-पेटपर गीली मिट्टीकी गरम पट्टी (रात्रिमें) और ७-एनिमा, आवश्यक होनेपर दिया जा सकता है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

आपका एक पत्र कुछ समय पूर्व प्राप्त हुआ, पर कार्यव्यस्तताके कारण पत्रोत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। आपने अपने पत्रमें अध्यात्मपथपर चलनेके लिये मार्ग-दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की है, साथ ही अपनी कुछ उलझनोंकी भी चर्चा की है। आपने लिखा कि 'मैं गुरुकी तलाशमें बहुत भटका तथा तीन जगह अभीतक फँस गया था, परंतु रामजीकी कृपासे निकल गया।'

शास्त्रोंमें गुरुकी विशेष महिमा बतायी गयी है। इस भवसागरको पार करनेके लिये तथा अध्यात्म-पथपर चलनेके लिये गुरुसे ज्ञान मिलता है, परंतु आजकल सत्-गुरु बड़ी कठिनतासे प्राप्त होते हैं। मनकी वृत्तियोंके चञ्चल होनेके कारण शिष्य एवं साधकका ध्यान सर्वप्रथम अपने गुरुकी कमजोरियों-पर ही जाता है। इसलिये इसमें सावधानीकी आवश्यकता है। वैसे संसारमें जिससे जो वस्तु प्राप्त होती है, वे उसके स्वाभाविक गुरु होते हैं। श्रीदत्तात्रेयजी महाराजके २४ गुरु थे। आजकलकी स्थितिमें सबसे श्रेष्ठ और निरापद् मार्ग यह है कि भगवत्स्वरूपमें ही गुरु-भावना अपनायी जाय। आप भगवान् श्रीसीतारामजीके उपासक हैं। उनके दर्शन और उनकी साधनाकी सिद्धिके लिये श्रीहनुमान्‌जी महाराजसे श्रेष्ठतम गुरु और कोई नहीं हो सकता। इसीलिये संत श्रीतुलसीदासजी महाराजने श्रीहनुमानचालीसामें यह लिखा है—

जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं॥

गुरु-रूपमें श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी कृपा निश्चित रूपसे भगवान् श्रीसीतारामजीका सांनिध्य प्राप्त करानेमें समर्थ है। इस बातमें बिना कोई संशय रखे आप अपने साधनपथपर अग्रसर होते रहें।

भगवत्प्राप्तिका एक अमोघ साधन है—श्रीभगवन्नामका जप, कीर्तन और उनका ध्यान। १६ नामका एक महामन्त्र है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस महामन्त्रकी १४ माला साधकको प्रतिदिन जपनी चाहिये। २४ घंटोंमें २१,६०० श्वास आते हैं, उतने भगवन्नामका जप प्रतिदिन होना ही चाहिये। इस महामन्त्रको श्रीहनुमान्‌जी महाराजका ध्यान कर उनसे प्राप्ति मानकर जप प्रारम्भ कर देना चाहिये। बिना कोई कामना रखे भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किया गया साधन अनन्त पुण्यप्रदायक होता है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

श्रीजगन्नाथजीके प्रसादकी महिमा

आपका कृपापत्र मिला। श्रीजगन्नाथपुरी (पुरुषोत्तमक्षेत्र) काशीकी भाँति ही बहुत ही प्राचीन तीर्थ है। पुराणोंमें इसका बड़े विस्तारसे वर्णन है। स्कन्दपुराणके विष्णुखण्डमें पुरुषोत्तम-माहात्म्यके ५१ अध्याय हैं। परिवर्तन तो सभी क्षेत्रोंमें हुए हैं। यहाँ भी हुए हैं। आपने श्रीजगन्नाथजीके प्रसादके सम्बन्धमें पूछा सो इस सम्बन्धमें यह निवेदन है कि भगवान्‌के प्रसादमें साधारण अन्न-बुद्धि करना पाप माना गया है। प्रसाद प्रसाद ही है और बिना किसी संकोचके सबको उसे ग्रहण करना चाहिये। फिर श्रीजगन्नाथजीके प्रसादके सम्बन्धमें तो यहाँतक वचन मिलते हैं—

पाकसंस्कारकर्तॄणां सम्पर्कोऽत्र न दुष्यति।
पद्मायाः संनिधानेन सर्वे ते शुचयः स्मृताः॥
निन्दन्ति ये तदमृतं मूढाः पण्डितमानिनः।
स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते नापराधिनः॥
येषामत्र न दण्डश्चेद्ध्रुवा तेषां हि दुर्गतिः।
कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे॥

(स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड)

'रसोई बनानेवालोंके सम्पर्कसे यहाँका प्रसाद दूषित नहीं होता, क्योंकि श्रीलक्ष्मीजीकी संनिधिके कारण वे सभी पवित्र हो जाते हैं। जो पण्डिताभिमानी मूढ़ लोग अमृतरूप प्रसादकी निन्दा करते हैं, भगवान् उनके अपराधको न सहकर स्वयं उन्हें दण्ड देते हैं। यहाँ कदाचित् उनको दण्ड भोगते हुए न भी देखा जाय, परंतु यह तो निश्चय ही है कि उनकी दुर्गति अवश्य होती है। मरनेके बाद वे महाघोर भयानक कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगते हैं। इसी प्रकार पद्मपुराणमें आया है—

चाण्डालेनापि संस्पृष्टं ग्राह्यं तत्रान्नमग्रजैः।

× × ×

पवित्रं भुवि सर्वत्र यथा गङ्गाजलं द्विज।
तथा पवित्रं सर्वत्र तदन्नं पापनाशनम्॥

'पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चाण्डालके द्वारा स्पर्श किया हुआ प्रसाद भी द्विजोंको ग्रहण करना चाहिये। हे द्विज! जैसे पृथ्वीमें गङ्गाजल सर्वत्र ही पवित्र है, वैसे ही यह प्रसाद भी सर्वत्र पवित्र और पापका नाश करनेवाला है।'

प्रसिद्ध भक्त श्रीरघुनाथ गोस्वामी तो पुरुषोत्तमक्षेत्रमें नालेमें बहकर आता हुआ प्रसाद बटोरकर उसे खाया करते थे। वह प्रसाद इतना पवित्र माना जाता था कि स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभुने एक दिन उनके हाथसे छीनकर उसको खा लिया था।

सत्यता तो यह है कि श्रीभगवान्‌का प्रसाद भक्तोंके लिये साधारण अन्न नहीं है, वह तो परम दुर्लभ, सर्वपापनाशक महाप्रसाद है। प्रसादका स्वाद, उसकी बाहरी पवित्रता, उसका मीठा या कड़वापन नहीं देखा जाता। उसमें देखनेकी बात केवल एक ही है कि वह भगवान्‌का प्रसाद है। जिसको हमारे प्रभुने मुँहमें रख लिया, वही हमारे लिये परम पवित्र, परम मधुर और परम अमृत है, अतएव भक्तोंको बिना किसी विचारके भक्ति-श्रद्धापूर्वक तथा सत्कारके साथ प्रसादको ग्रहण करना चाहिये।

इसका अर्थ यह नहीं कि साधारण खान-पानमें पवित्रताका ख्याल छोड़ दिया जाय। वहाँ तो शास्त्रोक्त सभी प्रकारकी पवित्रताका ख्याल पहले करना चाहिये। भगवत्प्रसाद साधारण अन्नकी श्रेणीसे परे है। श्रीजगन्नाथजीके महाप्रसादका तो शास्त्रोंमें अद्भुत वर्णन हुआ है।

ऐसा मत मानो कि मैं अपनी साधनासे—अपने परिश्रम-पुरुषार्थके बलसे संसार-सागरसे तर जाऊँगा। इस प्रकारकी धारणामें अहंकारका बड़ा भय है। भगवान्‌की असीम अनुकम्पापर विश्वास रखो, उनका आश्रय ग्रहण करो और साधन-भजन उन्हींकी प्रीतिके लिये करो। फिर कोई शंका या भय नहीं है।

योगाचार्य और उनकी योगचर्या—

महात्मा तैलंग स्वामी

प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व काशीमें तैलंग स्वामी नामक एक महात्मा रहते थे। आप एक परमसिद्ध योगी और जीवन्मुक्त पुरुष थे। ये दिगम्बरवेशमें रहा करते थे और बहुत कम बातचीत करते थे। ये भूत-भविष्य-वर्तमानकी बातें जानते थे और किसीके आनेपर बिना कुछ कहे, उसके मनके प्रश्नका उत्तर दे दिया करते थे। जल-थल, शीत-उष्ण, मान-अपमान इनके लिये समान था। इन्हें प्रायः सब तरहकी सिद्धियाँ प्राप्त थीं और उनके द्वारा ये शरणमें आये दुःखी प्राणियोंका कल्याण किया करते थे। ये मनुष्योंसे दूर ही रहनेकी चेष्टा करते, प्रसिद्धि होते देख तुरंत उस स्थानसे खिसक जाते। इन्होंने प्रायः २८० वर्षतक जीवन धारण करके स्वयं साधना की और कितने ही मनुष्योंका भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण किया।

इनका जन्म दक्षिण भारतके होलिया नामक नगरमें एक सुसम्पन्न ब्राह्मणपरिवारमें हुआ था। इनका नाम पहले तैलंगधर था। इनकी स्मरण-शक्ति ऐसी थी कि एक बार जो बात ये सुन लेते, उसे कभी न भूलते। युवावस्था आते-आते संसारके प्रति इनकी उदासीनता स्पष्ट दिखायी पड़ने लगी। इनका किसी विषयमें भी मन नहीं लगता था। इनकी इस स्थितिको इनकी तपस्विनी माता खूब गौरसे लक्ष्य कर रही थीं। उन्होंने जब देखा कि तैलंगधरका मन किसी परमधनके लिये अत्यन्त व्याकुल हो उठा है, संसारके प्रति लेशमात्र भी ममता नहीं है, तब उपयुक्त अवसर जानकर उन्होंने इन्हें उपदेश देना आरम्भ किया। तैलंगधरके व्यथित हृदयको माताके उपदेशसे बड़ी शान्ति मिली, ये बड़ी तत्परताके साथ उस उपदेशके अनुकूल साधना करने लगे। परंतु कुछ दिनों बाद इनके पिताका देहावसान हो गया और उसके प्रायः बारह वर्ष बाद मातृवियोग भी हो गया। इससे इन्हें बड़ा कष्ट हुआ और उसी दिन इन्होंने संसार त्याग दिया। जिस स्थानपर माताका अग्निसंस्कार हुआ था, उसी स्थानपर आकर ये बैठ गये। ये अपने लिये उसे ही परम पवित्र भूमि मानकर माताद्वारा उपदिष्ट मार्गसे साधना करने लगे।

उस स्थानमें प्रायः बीस वर्षतक तैलंगधरने साधना की। भगवत्कृपासे भगीरथ स्वामी नामक एक महात्मा उन्हीं दिनों इनके आश्रममें आये, जिनसे मिलकर इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। भगीरथ स्वामीके साथ ही ये पुष्करक्षेत्रमें आये और यहीं उनसे दीक्षा ली। गुरुने इनका नाम गणेशस्वामी रखा। परंतु गुरुकी सेवा भी वे अधिक दिन न कर सके। प्रायः दो वर्ष बाद गुरु भी इहलीला समाप्त कर इनसे अलग हुए। तब गणेशस्वामी तीर्थयात्राके लिये निकले। कई स्थानोंमें घूम-फिरकर अन्तमें रामेश्वरम् पहुँचे। यहाँ कुछ दिन साधन-भजन करनेके उपरान्त सुदामापुरी, नेपाल, मानसरोवर, नर्मदातीर और प्रयाग आदि स्थानोंमें बहुत दिनोंतक साधन-पूजन करते रहे। इन स्थानोंमें इनके कई चमत्कार भी देखे गये। जब इनके अपूर्व त्याग और अद्भुत महाशक्तियोंका पता लोगोंको लगता और लोग इनके पास अधिक संख्यामें आने लगते तो ये वह स्थान छोड़कर दूसरी जगह चले जाते। इस तरह नाना स्थानोंमें घूम-फिरकर, कितने ही व्यक्तियोंका उपकार कर अन्तमें काशीधाम पधारे। यहाँपर इनका नाम न जाननेके कारण तथा तैलंग देशके होनेके नाते लोग इन्हें तैलंग स्वामीके नामसे पुकारने लगे। काशीमें भी इन्हें कई स्थान बदलने पड़े। किंतु काशी छोड़कर फिर अन्यत्र कहीं नहीं गये। अन्तिम समयमें ये पञ्चगङ्गाघाटपर रहते थे। यहीं प्रायः २८० वर्षकी दीर्घ आयु पूरी कर ब्रह्ममें लीन हो गये। जिस स्थानमें ये रहा करते थे, वहाँ इनकी एक भव्य मूर्ति विराजित है, जिसकी नित्य पूजा होती है और उसके दर्शनके लिये बहुतसे यात्री आया करते हैं।

इनके अनेकों चमत्कार नाना स्थानों तथा काशीमें भी देखे गये। उनमेंसे कुछ प्रमुख घटनाएँ संक्षेपमें इस प्रकार हैं—

(१) प्रयागमें एक बार इन्होंने एक आदमीके देखते-देखते आँधी-पानीके कारण आदमियोंसे भरी हुई एक नावको गङ्गाजीमें डूब जानेपर पुनः बाहर निकाल लिया और किसीको मालूम भी नहीं हुआ कि नाव किस तरह घाटपर पहुँच गयी। नौकारोहियोंके चले जानेपर स्वामीजीने उस आदमीसे कहा—'इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। ऐसी शक्ति सब मनुष्योंमें है। परंतु प्रायः सब लोग अनित्य संसार-सुखके पीछे पड़े रहते हैं, अपनी उन्नतिकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। भगवान् यह मनुष्य-शरीर बनाकर स्वयं इसमें विराजते हैं, प्रत्येक मनुष्यके अंदर ईश्वरीशक्ति ओतप्रोत हो रही

है। मनुष्य जितना संसारके लिये परिश्रम करता है, उसका शतांश भी यदि वह भगवान्के लिये प्रयत्न करे तो वह उसे प्राप्त कर सकता है और उस समय उसके लिये संसारमें कुछ भी असम्भव नहीं रहेगा।'

(२) काशीमें एक बार एक अंग्रेज अफसरने इन्हें नंगा रहनेके कारण हवालातमें बंद कर दिया। सबेरे देखा कि हवालातका ताला बंद है और स्वामीजी हँसते हुए बाहर टहल रहे हैं। पूछनेपर इन्होंने कहा—'ताला-चाभी बंद कर देनेसे ही किसीका जीवन नहीं बाँधा जा सकता। अगर ऐसा हो सकता तो मृत्युकालमें हवालातमें बंद कर देनेसे मनुष्य मौतके मुँहसे ही बच जाता।'

(३) एक बार स्वामीजी बीच गङ्गाजीमें स्नान कर रहे थे और उज्जैनके राजा नावसे मणिकर्णिकाघाटपर आ रहे थे। स्वामीजीका परिचय पाकर वह नाव उनके पास ले गये। स्वामीजीने राजासे कुछ बातें करनेके बाद वह तलवार दिखानेको कहा जो उन्हें पुरस्कार-स्वरूप सरकारसे मिली थी। राजाने जब तलवार स्वामीजीके हाथमें दी तो उन्होंने इधर-उधर उलट-पलटकर उसको गङ्गाजीमें फेंक दिया। इस घटनासे राजाको बड़ा दुःख और क्रोध हुआ। परंतु जब नाव घाटपर आ लगी, तब स्वामीजीने पानीमेंसे दो तलवारें एक-सी उठा लीं और राजासे कहा कि अपनी तलवार पहचानकर ले लो। परंतु राजा पहचान न सके। तब स्वामीजीने कहा—'जिस चीजको तुम पहचान भी नहीं सकते, उसे तुम अपना क्यों कहते हो? अगर तुम्हारी चीज होती तो तुम जरूर पहचान लेते। जो चीज तुम्हारी नहीं है, उसके लिये तुम्हें इतनी ममता क्यों? तुम्हारे समान अहङ्कारी और मूर्ख दूसरा कोई संसारमें नहीं है।' यह कहकर स्वामीजीने एक तलवार राजाको दे दी और आप चलते बने।

इसी प्रकार स्वामीजीने नाना स्थानोंमें अनेक व्यक्तियोंको रोगमुक्त किया, प्राणदान दिया और सांसारिक-आध्यात्मिक कल्याण किया। ये प्रायः उपदेश दिया करते कि केवल आहार-विहार और विषय-भोगके लिये ही मनुष्यकी सृष्टि नहीं हुई है। भगवान्की जितनी शक्तियाँ हैं, वे सब-की-सब मनुष्यमें भी हैं। भगवान्ने मनुष्यको अपने मनके अनुसार रचकर उसे अपनी समस्त शक्तियाँ देकर सब जीवोंमें श्रेष्ठ बनाया है। यही क्यों? वे स्वयं इस मनुष्य-शरीरमें वास करते हैं। वही मनुष्यके हृदयमें आत्मरूपसे और मस्तकमें परब्रह्मरूपसे निवास करते हैं। वास्तवमें यह जो देह है, जिसे हम मनुष्य कहते हैं, कुछ भी नहीं है। सब कुछ वही है और उन्हींका है। परंतु कोई इस बातको नहीं समझता, न तो उन्हें देख पाता है और न उन शक्तियोंको जानकर उनसे समुचित कार्य लेता है। जो नित्य हमारे साथ हैं, जो वास्तवमें हैं, उन्हें कोई जानने या देखनेकी इच्छा भी नहीं करता, बल्कि कितने ही उनकी सत्ताको भी अस्वीकार कर नास्तिक बन जाते हैं। परंतु जो अन्तःकरणसे उन्हें पानेकी चेष्टा करते हैं, वे अवश्य उन्हें प्राप्त करते हैं। ईश्वरकी कल्पना झूठी नहीं, वह निश्चय ही हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं। उन्हें प्राप्त करनेके लिये साधना करनी चाहिये, उनकी भक्ति करनी चाहिये, गुरूपदिष्ट मार्गका अनुसरण करना चाहिये। इस संसारमें एक भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। भगवान्को प्राप्त करनेका यही सबसे उत्तम मार्ग है।

भगवान्की अमोघ कृपाने अब मुझे पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया है

भगवान्की अमोघ कृपाने अब मुझे पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया है। मन, इन्द्रियोंका कोई भी बन्धन अब मुझपर नहीं रह गया है। जबतक मैं परतन्त्र था, मेरी मजबूरी देखकर इन्द्रिय-मन सभी मेरा उपहास करते थे। अब वे सब मेरे नियन्त्रणमें रहते हैं। मैं अवाञ्छनीय आदतों तथा दुर्बलताओंसे मुक्त हो गया हूँ। मैं अनुपयोगी हानिकर विचारोंसे मुक्त हो गया हूँ। मैं सारे चिन्ता, भय, विषाद तथा शोकसे मुक्त हो गया हूँ। मैं अशान्ति, भ्रान्तिसे मुक्त हो गया हूँ। अब किसी भी लौकिक कामना, वासना, आसक्ति और ममताका मुझपर शासन नहीं रह गया है। भगवान् अपनी पूरी कृपा-शक्तिको लिये नित्य-निरन्तर मेरे साथ रहते हैं।

बस, एकमात्र उन्हींके मङ्गलमय नियन्त्रणने मुझे सर्वथा स्वतन्त्र कर दिया है।

एक पारसी सज्जनकी गोसेवा

(दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

'गौ' सम्पूर्ण मानव-जातिकी दूध आदिके द्वारा सेवा करनेके कारण माताके तुल्य है। इसलिये श्रद्धालु जन उसे 'गोमाता' कहकर पुकारते हैं। महाभारत (अनुशासनपर्व)में भीष्मपितामहने राजा युधिष्ठिरको गौका माहात्म्य बतलाते हुए कहा है कि गाय सभी प्राणियोंकी माता है और सभीको सुख देनेवाली है—'**मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।**'

वेदने पवित्रतम गायको न केवल भारतकी अपितु सम्पूर्ण विश्वकी जननी बताया है—'**गावो विश्वस्य मातरः।**' सृष्टिके प्रारम्भसे ही गौकी महिमा सुप्रसिद्ध है। ऋग्वेद (८। १०१। १५) में गौको अमृत (दूध, दही, घृत आदि) की नाभि अर्थात् मूल उत्पादन स्रोत, देवोंके यजनका प्रधान साधन, रुद्रोंकी माता, वसुदेवताओंकी दुहिता और आदित्योंकी बहन कहा गया है। ऋग्वेदमें गायको अघ्न्या अर्थात् किसी भी प्रकार चोट न पहुँचाने योग्य कहा गया है। पूजा, यज्ञादि कार्यों तथा शरीर-शुद्धिकरणमें गायके पञ्चगव्य—दूध, दही, घृत, गोमूत्र तथा गोमय—की महत्ता तो सर्वविदित ही है। गायके गोबर तथा गोमूत्रमें लक्ष्मीका साक्षात् निवास माना जाता है। आयुर्वेद शास्त्रके अनुसार यथाविधि गोमूत्रके पान करनेसे एवं देहपर गोमय मलकर स्नान करनेसे कुष्ठरोग तथा अन्य चर्मरोगोंका भी निवारण हो जाता है। गाय सर्वविध मङ्गलमयी, सदैव पूजनीय एवं माननीय है। अपनी अभिवृद्धिके लिये गो-सेवा, गो-प्रदक्षिणा तथा सर्वदा उसे नमन करना चाहिये। सुपात्रको गोदान करनेसे पृथ्वीदानका पुण्य प्राप्त होता है (अनुशासनपर्व ११। ७९)। गाय तथा धर्म-कर्मनिष्ठ ब्राह्मणकी रक्षा करना महापुण्यप्रद बतलाया गया है। गोमतीविद्या तथा गोसावित्री आदि स्तोत्रोंमें अनेक प्रकारसे गोमहिमाका गान किया गया है।

यहाँ गोसेवा तथा गोमहिमाके चमत्कारसे सम्बद्ध एक वृत्तान्तका वर्णन किया जा रहा है—

कुछ वर्ष पूर्वकी बात है, उन दिनों मैं दक्षिण-गुजरातके नवसारी शहरमें प्रवचनहेतु आमन्त्रित था। मैं बचपनसे गायके दूधका ही सेवन करता हूँ, किंतु वहाँ गायके दूधकी व्यवस्था नहीं हो पायी थी। शहरके एक श्रद्धालु पारसी महानुभावको इस बातका पता लगा तो वे अपनी गायका दूध लेकर मेरे पास आये। मैं उनके इस भावको जानकर अत्यन्त प्रभावित हुआ और उनसे उनका परिचय पूछा। वे बोले—मेरा नाम दारबशा है और मैं जरथोस्तीधर्मी पारसी गृहस्थ हूँ। मैंने सुना कि आप केवल गायके दूधका ही सेवन करते हैं, इसलिये अपनी गायका दूध आपके लिये लाया हूँ। जबतक आप हमारे शहरमें अतिथि रहेंगे, तबतक मैं स्वयं अपनी प्यारी गायका दूध आपकी सेवामें अर्पित किया करूँगा।

पारसी सज्जनकी इस प्रकारकी सेवा-भक्ति देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। मैंने उनसे फिर पूछा—आपको गो-सेवाकी महिमा कैसे ज्ञात हुई? उन्होंने जो चमत्कारिक प्रसंग सुनाया, वह इस प्रकार है—

'मैं नवसारीकी एक क्लॉथ मिलमें क्लीनरकी छोटी नौकरी करता था, तब पारिश्रमिक कम मिलता था। घरमें मैं और मेरी स्त्री दौलतबानू—दो प्राणी थे। कोई संतान नहीं थी। एक दिन दोपहरमें जब मैं भोजन करनेके लिये मिलसे पैदल ही घरकी ओर आ रहा था, तब एक हृदयविदारक दृश्य देखकर मेरा हृदय पिघल गया। एक कसाई एक सुन्दर, श्वेत, हृष्ट-पुष्ट गायको गलेमें रस्सी बाँधकर खींच रहा था। गाय आगे कदम रखनेको तैयार न थी, बेचारी रँभा रही थी। गायकी वह वेदना मुझे सह्य न हो सकी। मैंने कसाईसे गाय मुक्त कर देनेके लिये कहा। उसने कहा—'मैंने बीस रुपये नकद देकर इसे खरीदा है और इसे बूचड़खानेमें बेचनेपर मुझे कम-से-कम तीस रुपये तो मिलेंगे ही। मुझे रुपयोंकी आवश्यकता है, मैं इसे कैसे छोड़ सकता हूँ।' कसाईकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। हमारे पारसीधर्ममें गायको पवित्र और पूजनीय प्राणी माना गया है। मैंने उससे कहा कि यदि मैं गायकी कीमत दे दूँ तो क्या तुम इस गायको मुझे दे देगो? तो उसने 'हाँ' करते हुए मेरी बात मान ली। उस समय मेरे पास पैसे नहीं थे, अतः मैंने उसे घर चलनेके लिये कहा और मैं उसे गायसहित अपने घर ले आया। मैंने अपनी पत्नीको सब बात बता दी और कहा कि आज मुझे किसी भी प्रकार अपनी इस माताको कसाईखाने जानेसे बचाना है, मैं

इसकी आँखोंमें अपनी स्वर्गस्थ माँको देख रहा हूँ। घरमें भी पैसे न होनेसे मैं चिन्तित था, किंतु मेरी बात सुनते ही मेरी पत्नीने अपने शरीरपरका सोनेका अलंकार उतार कर मेरे हाथमें रख दिया। मैं बाजार गया और उसे बेचकर धन ले आया तथा उसमेंसे तीस रुपये मैंने उसे दे दिये। वह कहने लगा—इस बाँझ गायको लेकर आप क्या करेंगे ? मैंने कहा कि अपनी इस माताकी सेवा करूँगा। इसे देखकर मुझे यह लगता है कि मुझे बचपनमें छोड़कर प्रभुके घर चली जानेवाली मेरी माँ आज मेरे पास वापस आ गयी है, अतः मैं मातृसेवा (गोसेवा) करूँगा।

मेरी करुणापूर्ण इस वाणीको सुनकर वज्रहृदय वह कसाई भी पिघल गया। उसकी आँखें गीली हो गयीं। 'तुम अल्लाहके रहनुमा हो'—ऐसा कहकर वह चला गया। मैंने और मेरी पत्नीने गोमाताके चरणोंमें मस्तक नवाया और प्रार्थना की। मुझे उस समय याद आया कि आज ही मेरी प्यारी माँका मृत्यु-दिन है और आज ही मेरी माता गायके रूपमें घर आ गयी। मैं और मेरी पत्नी गोमाताकी गरदनमें हाथ डालकर—माँ ! माँ पुकारते हुए रोने लगे। हमारे सच्चे हृदयकी पुकार सुनकर तथा हमारा शुद्ध भाव देखकर—गोमाताकी आँखें भी भींग गयीं।

प्रतिदिन हम अपनी माँकी तरह गोसेवा करने लगे, परिणामस्वरूप नौकरीमें मेरी तरक्की हुई। हम निःसंतान थे, हमें पुत्री प्राप्त हुई। खेतमें अच्छी फसल आने लगी। आश्चर्य तो यह हुआ कि वह 'गंगा' गाय जो बाँझ थी, गाभिन भी हुई और उसने एक बछड़ीको जन्म दिया। हमने उस बछड़ीका नाम 'जमुना' रखा। हमारी गोमाता—'गंगा' दूध देने लगी। दूधका अधिकांश भाग हम साधु-संतों तथा निर्धन बच्चोंकी सेवामें प्रयोग करने लगे। कुछ समय बाद हमारी गोमाता 'गंगा'ने दूसरी बछड़ी 'गोदावरी' को जन्म दिया। आज हम सभी बड़े आनन्दमें हैं।' इतना कहकर वे पारसी सज्जन चुप हो गये।

यह घटना सुनकर तो मैं उनकी गोभक्तिसे अत्यन्त प्रभावित हुआ। मैंने उनसे कहा—यह जो विलक्षण चमत्कार आप देख रहे हैं, यह सब आपकी गोमाताकी रक्षा और उसे मातृवत् समझकर उसकी भक्तिपूर्वक सेवा करनेसे ही हुआ है। गोसेवाका प्रत्यक्ष फल तो मिलता ही है, पारमार्थिक सुख भी अवश्य मिलता है। भारतके सभी लोग यदि आपकी ही तरह गोरक्षा एवं गोसेवामें लग जायँ तो भारत स्वर्ग बन जाय, विश्वकी सुख-समृद्धि बढ़ जाय तथा सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य छा जाय।
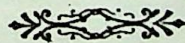
याचना

माँगूँगा न भुक्ति-मुक्ति, माँगूँगा न भोग-योग; देना मुझे कसकभरी पीड़ाका व्यवहार।
करना मत किसीकी कृपाका पात्र तुम्हें छोड़, देना मत किसीकी प्रशंसाका व्यर्थ भार॥
करना मत किसीके मृदु जीवनका कण्टक मुझे, करना मत किसीकी भोली आशाका आधार।
करना मत किसीके भी उत्पीड़न-योग्य मुझे, मारा न जाय किसी दुर्बलका अधिकार॥
मेरा स्वत्व, मेरा सुख देखूँ न छीना किसने, मेरा सर्वस्व रहे सबहीका उपहार।
मुझको सताकर हँस पाये कोई क्षण एक; ऐसे क्षणोंसे बने जीवन सब, सरकार !॥
कोई न जाने मुझे, कोई न माने मुझे, कोई न पूछे मेरे मानसका समाचार।
जगतीके पाप परिणाम मैं भोगूँ, और पावें सब सुख-शान्ति मेरे पुण्य अधिकार॥
दे यदि सकें तो दे दें और यह इतना प्रभु, छूटे तन सुरसरि-तट कहते जय जगदाधार।
कोई न रोये-धोये, कोई न कष्ट पाये; पेट उससे भर लेवें प्राणी भी दो-चार॥

—सुदर्शन सिंह
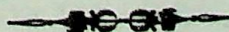
पढ़ो, समझो और करो

(१)

हनुमान्‌जीकी आराधनाका प्रत्यक्ष फल

मेरे बड़े भाई श्रीशैलेशकुमार घरमें आपसी कलहसे दुःखी होकर २४ अगस्त १९९०को घरसे कहीं चले गये, शामतक जब वे वापस नहीं लौटे तो परिवारके सभी लोग अत्यन्त चिन्तित हो गये। इधर-उधर बहुत खोज-बीन की गयी, किंतु कहीं भी कुछ पता नहीं लग सका। हर तरफसे निराशा ही हाथ लग रही थी। सभी लोग हतप्रभ थे। किसीको कुछ सूझ ही नहीं रहा था। इसी खोज-बीनमें कई दिन बीत गये।

जब व्यक्ति अपने प्रयत्न और पुरुषार्थसे हार जाता है, तब भगवान् ही उसे राह दिखाते हैं। संयोगसे एक दिन मेरे पिताजीके मित्र श्रीरामराजजी जो बहुत समयसे 'कल्याण'के प्रेमी पाठक हैं, 'कल्याण'का अङ्क लेकर दौड़े-दौड़े हमारे यहाँ आये और कहने लगे, देखिये इसके 'पढ़ो, समझो और करो' स्तम्भमें क्या निकला है? पिताजीने उत्सुकतावश सितम्बर मास, १९९०के 'कल्याण'का वह साधारण अङ्क मुझे पढ़नेके लिये दिया। उसके 'पढ़ो, समझो और करो' स्तम्भमें हनुमान्‌जीकी आराधना तथा श्रीहनुमानचालीसाके १०८ पाठसे कलकत्तेमें खोये हुए 'विवेक' नामक बालककी प्राप्तिकी घटना निकली थी। मैंने वह पूर्ण घटना पिताजी तथा अन्य सभी बैठे लोगोंको सुनायी।

घटना सुनकर सभी लोगोंने हमें यह सलाह दी कि आप भी इस घटनाके अनुसार ही श्रीहनुमान्‌जीकी आराधना करें। उनकी कृपादृष्टि होनेपर कौन-सा कार्य असम्भव है?

अन्ततोगत्वा हमने यह निश्चय किया कि 'कल्याण'में प्रकाशित घटनाके अनुसार श्रीहनुमान्‌जीकी प्रसन्नताके लिये श्रीहनुमानचालीसाका तबतक पाठ चलता रहे, जबतक भाईका कोई समाचार नहीं मिल जाता है। यह बात २९ अक्टूबर १९९०की थी। दूसरे ही दिन मंगलवारसे मैंने और मेरे पिताजीने अखण्ड घृतदीप जलाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीहनुमानचालीसाका पाठ प्रारम्भ कर दिया। चार ही दिन व्यतीत हुए थे कि ३ नवम्बरको दिनमें साढ़े ग्यारह बजे पोस्टमैनने पुकारा। मेरे बड़े भाईकी पुत्री उस समय बाहर ही खड़ी थी। पोस्टमैनने उसे पत्र दे दिया। पत्र लेकर वह अंदर आयी। उसकी माताजीने जैसे ही लिफाफा देखा, वह हस्तलेख पहचान गयी, उनकी खुशीका ठिकाना न रहा। उन्होंने दौड़ते-दौड़ते पत्र पिताजीको दिया। पत्र देखकर सभी प्रसन्न हो गये और समझने लगे कि यह पत्र तो साक्षात् हनुमान्‌जीने ही लाकर दिया है। पत्रमें भाई साहबने अपनी कुशलताका समाचार तथा अपना पता भी दिया था। हम सभी लोग हनुमान्‌जीकी कृपाका प्रत्यक्ष फल पाकर कृतार्थ हो गये थे। हमारी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था।

पिताजीके आदेशानुसार उस पतेको लेकर मैं अपने मामाजीके साथ उज्जैन पहुँचा। सर्वप्रथम हमने वहाँ भगवान् महाकालेश्वरके दर्शन किये। तदुपरान्त हम यादवधर्मशालाके निकट श्रीराजेन्द्रयादवजीके घर पहुँचे। वहाँ ठहरे हुए अपने बड़े भाईसे भेंट की। श्रीयादवजी भाई साहबको बहुत आदर तथा सम्मान देते थे। हमलोग एक दिन वहाँ रुके। हनुमान्‌जीकी आराधनाके विषयमें उन्हें भी हमने अवगत कराया। दूसरे दिन वहाँसे हम लोग वापस रवाना हुए और अपने गाँव परेली, हरदोई पहुँच गये।

यह सब हनुमंतलालजीकी असीम कृपाका ही चमत्कार था। उसी समयसे हम तथा हमारे गाँवके सभी लोगोंकी हनुमान्‌जीपर आस्था, श्रद्धा एवं भक्ति अत्यन्त दृढ़ हो गयी। मेरे परिवारके सभी लोग तो उनकी आराधनाका प्रत्यक्ष फल पाकर कृतकृत्य हो गये थे। —श्रीउमेशकुमारजी पाठक

(२)

गोरक्षाका चमत्कार

कुछ समय पूर्वकी घटना है। कानपुरके रेउना ग्रामके पशु-चिकित्सालयमें एक चिकित्सक महोदय सेवारत थे। एक दिन वे अपने चिकित्सालयके आँगनमें बैठे हुए थे। उसी समय उन्होंने देखा कि एक कसाई उन्हींके चिकित्सालयके सामनेसे एक गाय किसीसे खरीदकर ले जा रहा है। यद्यपि वह गाय स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट थी, किंतु कसाईकी मारसे कभी सड़कपर गिर पड़ती थी तथा कभी रस्सी छुड़ाकर भागनेका प्रयत्न कर रही थी। कसाईने निर्दयतापूर्वक डंडोंकी मारसे उसे

अधमरा-सा कर दिया था। सड़कपर चलनेवाले लोग खड़ा होकर यह दृश्य देखने लगे। गाय अत्यन्त कातरदृष्टिसे सबकी ओर देखती जा रही थी, मानो कह रही हो कि कोई भला मानुष इस कसाईके चंगुलसे मुझे बचा ले, यह मुझे मार डालेगा। सभी लोग चुपचाप यह तमाशा देखते ही रह गये। किंतु गायकी यह हालत देखकर चिकित्सक महोदय बैठे न रह सके। वे शीघ्र ही कसाईके पास आये और बोले—'इस गायको तुम क्यों मार रहे हो ? इसे छोड़ दो।' इसपर कसाईने कहा—'मैंने इसे रुपया देकर खरीदा है, अब चाहे मैं जो भी करूँ, इससे आपको क्या मतलब ?'

चिकित्सकने कहा—'यदि पैसोंकी ही बात है तो तुम मुझसे इसका अधिक-से-अधिक दाम ले लो और यह गाय मुझे दे दो।' कसाईको तो अपना लाभ देखना था। अपने लागत मूल्यसे बहुत अधिक धन पाकर उसने वह गाय उन्हें बेच दी। ज्यों ही कसाई जाने लगा, गाय चिकित्सकके पास आकर खड़ी हो गयी। चिकित्सक उसे प्यारसे सहलाते हुए अपने घर ले आये और बड़े आदर एवं श्रद्धासे उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। कुछ दिनों बाद गो-माताने एक बछड़ेको जन्म दिया।

चिकित्सक महोदयके कोई संतान नहीं थी, वे इस दुःखसे बड़े दुःखी रहते थे। गायकी सेवाका उन्हें प्रत्यक्ष फल मिला। कुछ समय बाद उन्हें भी एक पुत्रकी प्राप्ति हुई। उन्होंने उस पुत्रको गो-माताका ही कृपा-प्रसाद माना और गायमें उनकी श्रद्धा दिन-पर-दिन बढ़ती गयी। पुत्रके जन्मके उपलक्ष्यमें उन्होंने एक महान् उत्सवका आयोजन किया और अपने सभी इष्ट-मित्रोंको इस घटनासे अवगत कराया। सभी गोमाताकी सेवाके चमत्कारसे अत्यन्त प्रभावित हुए।

वास्तवमें गाय सभी कल्याण-मङ्गलोंकी जननी है। अतः अपने वास्तविक कल्याणके लिये गोमाताकी सेवा अवश्य करनी चाहिये।

—श्रीसुरेशचन्द्रजी शर्मा

मनन करने योग्य

[समझने-सीखनेकी चीज]

(१)

आँखें खोल दीं

जेठकी लपलपाती कड़ी धूप है। जमीन तवे-सी तप रही है, उसपर पैर नहीं रखा जाता। ऐसी गरमी पड़ रही है कि तालाबोंका पानी मानो उबाल खा रहा है। दोपहर होनेको आया है। भावनगर राज्यके एक छोटे गाँवका सोंडो नामका माली गाँवके पास ही अपनी बाड़ीमें चरस चला रहा है। मालीके शरीरपर पूरा कपड़ा नहीं है, उसके बैलोंका पेट सट गया है, चरसमें भी छेद हो गया है। सोंडो माली बड़ा गरीब है।

अरबी घोड़ेपर सवार, सिपाहीकी वेष-भूषामें एक मनुष्य सोंडोकी बाड़ीमें आया। बाड़ीमें एक बरगदका पेड़ था, उसकी शीतल छायामें अपने घोड़ेको बाँधकर वह पानी पीनेके लिये कुएँपर गया। उसने हाथ, मुँह और पैर धोकर दो चुल्लू पानी पिया। सोंडोने चरस हाँकते-हाँकते उससे पूछा—

'आप भावनगर रहते हैं ? राजाके सिपाही हैं ?'

सिपाहीने कहा—'हाँ, मैं राजाका नौकर हूँ और भावनगर रहता हूँ।'

सोंडो—'तुम्हारी राजासे कभी भेंट-मुलाकात होती है ?

सिपाही—'हाँ कई बार, राजाके साथ ही रात-दिन रहना पड़ता है।'

सोंडो—तो क्या दया करके दरबार बापू विजयसिंहतक मेरा संदेश पहुँचा देंगे ?

सिपाही—'हाँ-हाँ, मैं अवश्य पहुँचा दूँगा, बोलिये क्या कहना है ?'

सोंडो—राजा साहबसे कहियेगा कि 'सरकार ! आप कभी बस्तीकी ओर भी देखेंगे या सारा जीवन शिकार खेलनेमें ही बिता देंगे ? आप तो महलोंमें बैठे-बैठे मौज मारते हैं और रैयतके बच्चे रोटीके टुकड़ोंके लिये छटपटाते हैं; आप राजा हैं या कसाई ? राजाकी सेवा करके प्रजा मरी जा रही है और राजाको इसका जरा-सा भी भान नहीं होता।' भाई ! आप तो सिपाही हैं, आपसे क्या कहूँ ? सचमुच कलियुग आ गया है। राम-जैसा राज्य गया, धरती माताने भी शक्ति चुरायी और प्रजा भूखों मरने लगी।

सोंडो जो मनमें आता बोलता जाता और चरस चलाता

जाता तथा वह सिपाही मंद-मंद मुसकराता, मानो सोंडोकी बातें सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा हो।

सूर्य सिरपर आ गया और सोंडोने चरस खोल दी। बैलोंको घास डाल दिया और स्वयं बरगदकी छायामें आकर बैठ गया। इतनेमें उस सिपाहीने कहा—'भाई, भूख लगी है, कुछ खानेके लिये है ?'

सोंडो—'क्या होगा ? आप सब मिलकर गरीबोंको लूटनेमें कोई कसर रखते हैं ? घरमें आपलोगोंने अनाज तो रहने दिया नहीं। हम लपसी-मट्ठा खाकर दिन काट रहे हैं। दलिया है, खाइयेगा ?'

सिपाही—'दलिया कैसा होता है ?'

सोंडो—'इतने बड़े आप हो गये और दलियाका पता नहीं ? दलिया माने गेहूँकी लपसी।' इतना कहकर बरगदकी डालमें छींकेपर मिट्टीकी हाँड़ीमेंसे थोड़ा दलिया बड़के एक पत्तेपर रखकर सोंडोने उस सिपाहीको दिया।

बड़ी भूख लगी थी, खट्टे-मीठे मट्ठेमें सिजाया हुआ ठंडा-ठंडा दलिया उस सिपाहीको अमृत-जैसा स्वादिष्ट लगा। अन्नका महत्त्व भूखा ही जानता है, जिन्हें खाते-खाते मन्दाग्नि हो जाती है, उन्हें अन्नके महत्त्वका क्या पता ? उसने थोड़ी देरमें पत्ता खाली कर दिया और कहा—'और भी है ?'

'मुझे भूखे रखोगे'—यों कहकर सोंडोने हँसते-हँसते सारा दलिया उसे खिला दिया। हाँड़ी खाली हो गयी। उसका पेट भर गया। वह आदमी दलिया खाकर और ठंडा पानी पीकर तृप्त और आप्यायित हो गया। तदनन्तर सोंडोकी टूटी चारपाईपर दो घड़ी विश्राम करने लगा।

शामको चार बजे वह उठा और घोड़ेपर सवार होकर चलनेको तैयार हो गया। जाते समय उसने सोंडोसे पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है ?'

सोंडो बोला—'मेरे नामसे आपको क्या करना है ? सिपाहीलोग बहुत बुरे होते हैं, हम भावनगर जाते हैं, तो बेगारी लिया करते हैं।'

घुड़सवारने कहा—'बेगारी नहीं लूँगा, अपना नाम बताओ तो, किसी दिन यदि भावनगर आओगे तो पहचान रहेगी।'

'मेरा नाम है सोंडो माली। जिसके दिन फिरे होते हैं, वही भावनगर जाता है।'

घुड़सवारने मुसकराते हुए घोड़ा दौड़ाया। संध्या हुई और सोंडो माली बैल-चरस आदि लेकर घर आया।

दूसरे दिन सूर्य उगनेसे पहले ही दो घुड़सवार सोंडो मालीका घर पूछते-पूछते आ धमके और जोरसे उन्होंने पूछा—सोंडोका घर कौन-सा है ?'

सोंडो घरसे बाहर निकला और बोला—'क्या है ? मेरा नाम सोंडो है।'

'चलो भावनगर, दरबार विजयसिंह बापूने तुमको बुलाया है।'

विजयसिंह बापूका नाम सुनते ही सोंडो थर-थर काँपने लगा। उसके मनमें आया कि हो-न-हो कल जो मैंने संदेशा कहलानेकी मूर्खता की थी, यह उसीका परिणाम है। अब राजा मुझे जीता नहीं रहने देगा। हथकड़ी बेड़ीसे जड़ देगा। सोंडो ठंडा पड़ गया। उसकी स्त्री और दोनों लड़के रोने लगे। दोनों सवार सोंडोको साथ लेकर भावनगरके रास्ते चले।

वह काँपते हुए पैरोंसे राजमहल पहुँचा। वहाँ जाकर उसने क्या देखा ? जो घुड़सवार कल उसकी बाड़ीमें था, वही यहाँ गद्दीपर बैठा है। वह तो स्वयं विजयसिंह बापू हैं भावनगरके राजा। सोंडो तो बापूके सामने जाकर मन्त्रमुग्धके समान खड़ा हो गया।

राजा विजयसिंह गद्दीपरसे उठे। सोंडोका हाथ पकड़कर उसे गद्दीके पास ले गये। गद्दीके पास बैठाकर उसे धीरज देते हुए बोले—'सोंडो ! क्यों काँप रहे हो ?'

'अन्नदाता ! कल मैं आपको उलटी-सीधी बातें कह गया, इसी कारण।'

'सोंडो ! प्रजा तो मेरी बालक कहलाती है और बच्चोंकी गाली माँ-बापको मीठी लगती है। फिर, तुमने तो सच्ची बात ही कही थी। तुमने तो मेरी आँखें खोल दीं।'

विजयसिंह बापूने ताँबेका पत्तर मँगाया। उसपर बारह एकड़ जमीन, चार भैंस, बारह बैल, बीस कलसी बाजरी और एक हजार रुपये देकर लेख लिख दिया। वह लेख सोंडोको दिया। कहा जाता है कि सोंडोके वंशजोंके पास आज भी वह लेख मौजूद है।

(२)

ईमानदार चोर

काठियावाड़में एक साल भयानक अकाल पड़ा। लोग दाने-दानेको तरसने और भूखों मरने लगे। बेचारे पशु घासके बिना मरने लगे। छोटा-सा राज्य था। राजाने किसानोंको तकाबी और अन्न बाँटना आरम्भ कर दिया।

गाँवमें एक कोइरी रहता था। उसके चार-पाँच बच्चे थे और दो स्त्री-पुरुष थे। घरमें खानेको अन्न नहीं था। बच्चे रोटीके टुकड़ोंके लिये तड़फड़ाते थे। दोनों स्त्री-पुरुष एकदम भूखे रहते और किसी तरह दो-चार दाने बच्चोंके मुँहमें देनेकी चेष्टा करते, पर अन्तमें उनको कुछ भी खिलानेका साधन नहीं रह गया।

कोइरिन बोली—'राजाकी सेवामें जाओ, वे अन्न देंगे।' कोइरी राजाकी सेवामें गया। राजाने पूछा—'क्या तुम किसान हो? हमारी भूमि जोतते हो?'

'ना, बापू! मैं जमीन नहीं जोतता, मैं गरीब कोइरी हूँ, मेरे बच्चे भूखों मर रहे हैं। अगले साल मैं ड्योढ़ा अनाज लौटा दूँगा। आप दया करते तो अच्छा होता।'

राजाने टका-सा जवाब दे दिया कि 'हम तो अपने किसानोंको तकाबी दे रहे हैं, सबको नहीं देते।'

कोइरी बेचारा मुँह लटकाये लौट गया। वह सोचने लगा—'अब क्या करना चाहिये। बच्चोंका दुःख देखा नहीं जाता।' अन्तमें भूखों मरता हुआ कोइरी राजाके कोठारमें चोरी करनेका विचार करने लगा। उसने अपने घरसे राजाके कोठारतक एक सुरंग खोदी। बैठे-बैठे चल सकने लायक वह सुरंग थी।

कोठारका ताला बंद था। लोहेके छड़से उसमें एक छेद कर दिया। अनाज भरभराकर गिरने लगा। बहुत दिनोंके बाद अन्नका दर्शन कर बेचारा कोइरी प्रसन्न हो गया। थैलेमें अनाज भरकर उसने छेद बंद कर दिया और प्रसन्न होता हुआ कोइरिनके पास आया।

उसके बाद उसने एक थैली बनायी, ठीक दस सेरके वजनकी। फिर वह रोज रातको उस सुरंगमें जाता और एक थैली अनाज भर लाता। बच्चोंके पेटमें रोटी जाने लगी। अधिक अनाज निकलता तो ऊपर गड्ढा हो जाता और किसीको पता लग जाता। इसलिये वह प्रतिदिन केवल दस सेर अनाज ही लाता था।

कोइरीने इस प्रकार साल बिता दिया और किसीको पता भी नहीं चला कि वह अनाज कहाँसे लाता है।

सालभर पूरा हो गया और दूसरा चौमासा आया। बरसात बहुत अच्छी हुई। दिन अच्छे आये। कोइरी और कोइरिन मजदूरीमें जुट गये। मजदूरी भी खूब चली। खूब अनाज आया। एक दिन दो गाड़ी अनाज भरकर कोइरी राजाके किलेमें पहुँचा। राजाके सामने राम-राम कहकर वह खड़ा हो गया।

राजाने पूछा—'किस तरह आये?'

'बापू! आपका अनाज खाया है। ड्योढ़ा जोड़कर आपको लौटाने आया हूँ।'

राजाकी आँखें लाल हो गयीं। 'इसको तो मैंने नाहीं कर दी थी, फिर किसने अन्न दिया?' उसने कामदारको बुलाया और पूछा—'तुमने इसको कितना अनाज दिया है?'

'नहीं बापू! इसको मैंने अन्न नहीं दिया'—कामदार बोला। 'तब इसको अनाज दिया किसने?'

दोनों हाथ जोड़कर कोइरी बोला—'बापू! मुझको किसीने अनाज नहीं दिया। मैंने आपकी चोरी की है। भूखों मरता था, बच्चे रोटी बिना तड़फड़ाते थे। मैंने अपने घरसे कोठारतक सुरंग खोदकर कोठारसे अनाज चुराया। रोज दस सेर निकालता था। इस तरह साल पूरा हो गया। इस साल खूब कमाया, इसलिये आपका अनाज लौटाने आया हूँ।'

राजाने दाँतों-तले अँगुली दबा ली। 'यह चोर है या साहु? इसने अनाज चुराया, इसका किसीको भी पता नहीं था। अरे, पता लगनेवाली बात भी तो नहीं थी। इसने छिपाया होता तो कोई नहीं जानता, फिर भी यह कोइरी अपने-आप अनाज देनेके लिये आया। धन्य है इसको। इसीका नाम ईमानदारी है! इसको चोर कौन कहेगा?'

प्रसन्न होकर राजाने कामदारसे कहा—'इसको अच्छी-से-अच्छी जमीन दो और अपना जोतदार बना लो। एक जोड़ी बैल दो। ऐसे ईमानदार आदमीको दुःखी होने देना ठीक नहीं है।' गाड़ी लेकर कोइरी घर लौटा। कोइरिन और उसके लड़के प्रसन्न हो गये और सुखसे रहने लगे।

हिंसाका नग्न-ताण्डव

मनुष्य जबतक पापको पाप समझता है, तबतक वह पापसे बचता है। कभी परिस्थिति या किसी लोभ-विशेषके कारण वह पाप कर भी लेता है तो पीछे पश्चात्ताप करता है, पर जब पापसे घृणा हट जाती है और उसमें बुद्धिमानी तथा गौरवका बोध होने लगता है, पापमें पुण्य-बुद्धि हो जाती है, तब पापसे बचना बहुत कठिन हो जाता है। फिर तो पापके नये-नये तरीके निकलते रहते हैं। इस प्रकार पापको पुण्य, अधर्मको धर्म या अन्यायको न्याय मानते-मानते बुद्धि इतनी तमसाच्छन्न हो जाती है कि फिर सभी चीजें उसे उलटी दीखने लगती हैं—**'सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।'** (गीता १८।३२)। ऐसा स्वार्थ और कामोपभोग-परायण लोभग्रस्त तामसी मनुष्य या समाज क्रमशः मानवताको खोकर दानव या असुर बन जाता है, फिर ऐसा कोई जघन्य कार्य नहीं जो वह नहीं कर सकता।

आज देशमें जो हिंसात्मक घटनाएँ घट रही हैं वे अभूतपूर्व हैं। पूर्वकालमें कोई भी अनैतिक कार्य—चोरी, डकैती, हिंसा और हत्या प्रच्छन्न-रूपसे—छिपकर व्यक्तिगत-रूपसे होती थी, परंतु आजकल यह हत्या और हिंसा खुले रूपमें बिना किसी डर-भयके हो रही है। इन तत्त्वोंका दुस्साहस धीरे-धीरे इतना अधिक बढ़ता जा रहा है कि वे समाज और देशमें आसुरी वृत्तियोंसे युक्त हिंसात्मक अनैतिक संगठनों और दलोंका भी निर्माण करने लगे हैं, उन संगठनों अथवा उनके सदस्योंको बिना किसी कारण शान्तिप्रिय निर्दोष नागरिकोंकी हत्या करनेमें कोई संकोच नहीं होता। बेगुनाह, निरीह नागरिकोंका अनायास किसी भी समय बिना कोई कारण अपहरण किया जा रहा है। वे कोई भी जघन्य कृत्यकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेमें गौरवका अनुभव करते हैं। घृणा, द्वेष और क्रोधकी पराकाष्ठा इतनी चरम सीमापर पहुँच गयी है कि वे अपने अस्तित्वको मिटाकर भी दूसरेका विनाश करना चाहते हैं। यह एक अत्यन्त भयावह स्थिति है।

पिछले दिनों पूर्व प्रधान मन्त्री श्रीराजीव गाँधीकी अप्रत्याशित हत्या इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है, जिसकी मिसाल विश्वके इतिहासमें खोजनेपर भी नहीं मिल सकती। कहते हैं कि राजीव गाँधीकी हत्याके लिये मानव बम बनाया गया। अपनी जान बचाकर दूसरेकी हत्याका प्रयास तो कई लोग करते हैं, पर किसी अन्यको मारनेके लिये अपनी हत्या भी साथ-साथ करना एक असाधारण जघन्य कृत्य है। अपने शास्त्रोंमें परहिंसा और हत्याका जो पाप कहा गया है, उससे कम आत्महत्याका पाप नहीं है।

आज सम्पूर्ण विश्व विनाशके कगारपर खड़ा है। जल, थल और आकाश सभी विषाग्निकी वर्षासे संतप्त हैं। मनुष्य आज अपनी मानवताको मारकर असुर—पिशाच बन गया है, लाखों-करोड़ों निरीह नर-नारी मृत्युके मुँहमें जा रहे हैं, कोई गोलीकी मारसे तो कोई बमके धमाकेसे। सभी भयानक शस्त्रोंके शिकार हो जायँ, सबके घर-द्वार राखके ढेर बन जायँ, पर हम सुरक्षित रहें और अपने क्षुद्र स्वार्थकी पूर्तिके लिये दूसरोंका अनिष्ट करनेमें कोई संकोच न करें—यह मानवकी पैशाचिकता उसकी राक्षसी वृत्ति नहीं तो और क्या है?

वास्तवमें मनुष्य अपने जीवनका परम लक्ष्य भूलकर स्वार्थपूर्ण कामोपभोग-वासनामें फँसता हुआ सुखकी आशामें नये-नये पापकर्म करता है और पुनः उन्हें भोगनेके लिये आसुरी योनियोंमें और नरकोंमें उसे जाना पड़ता है। मानव-जीवनकी इससे बड़ी विफलता, व्यर्थता और क्या होगी? भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्यकी इस विफलतापर मानो शोक प्रकट करते हुए-से कहते हैं—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६।२०)

'अर्जुन! ये मूढ मानव मुझको (भगवान्‌को) न प्राप्त होकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं फिर उससे भी अति नीच गति—घोर नरकादिको प्राप्त करते हैं।'

भारतवर्ष जो आध्यात्मिकताकी भूमि थी, आज विशेष रूपसे तमसाच्छन्न है। त्यागपूर्ण आध्यात्मिक भावनाका बड़ी तेजीसे नाश हो रहा है, नैतिक स्तर गिर रहा है। सदाचार, संयम, सत्य, त्याग, कर्तव्यपरायणता, ईश्वरनिष्ठा और ईमानदारी आदि सद्गुणोंके विनाशमें दक्षता समझी जा रही है। सर्वत्र स्वार्थ, असंयम, असत्य, नास्तिकता, दम्भ, मान, द्वेष और वैरका निर्लज्ज नृत्य अथवा नग्न ताण्डव है। मानव-जीवनमें प्रमादका पूर्ण विस्तार हो रहा है। इसी जीवनकी ओर बड़ी तेजीसे हमारे युवक और कुछ पथभ्रष्ट साथी दौड़ लगा रहे हैं। इसका परिणाम शान्ति तथा सुख कैसे होगा?

यह रोग तो प्रायः सर्वत्र ही फैल रहा है, परंतु देशके कुछ भागोंमें बेलगाम हो गया है। आज जो देशमें घोर अशान्तिका वातावरण है, उसका कारण यही महारोग है। कोढ़को महारोग कहते हैं, पर यह स्वार्थ और कामासक्तिजनित प्रमाद तो मनका महारोग है। शरीरका महारोग तो मरनेके साथ मर जाता है, पर यह मानस महारोग तो मरनेके बाद भी साथ ही जायगा।

'वास्तवमें स्वार्थपूर्ण कामनाओंकी पूर्तिमें सुख है' यह धारणा ही भ्रान्त है। जबतक यह भ्रान्ति नहीं मिटेगी, तबतक वास्तविक सुख दूर-से-दूर हटता चला जायगा। अतः विश्वात्मा सर्वान्तर्यामी परमात्म-प्रभुसे यह प्रार्थना करनी चाहिये कि वे जगत्‌के जीवोंकी असद्बुद्धिका विनाश कर उन्हें सत्कर्म और सन्मार्गकी ओर प्रेरित करें।—**राधेश्याम खेमका**

गीताप्रेस, गोरखपुरका सस्ता, सात्त्विक, कल्याणकारी साहित्य सदैव पढ़ें

नारी-अङ्क

नारीके महत्त्व, अभ्युदय, गौरव-रक्षण एवं भारतीय नारीके आदर्श और कल्याण-मङ्गलके लक्ष्यको सामने रखकर आजसे लगभग तैंतालीस वर्ष पूर्व सन् १९४८ ई०में 'कल्याण'के २२वें वर्षके विशेषाङ्कके रूपमें 'नारी-अङ्क' प्रकाशित किया गया था। अपनी विशिष्टता और नारी-जगत्के लिये उपयोगी सिद्ध होनेके कारण यह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। इसके दो संस्करण थोड़े समयमें ही हाथों-हाथ बिक गये; तथापि इसकी माँग उत्तरोत्तर बढ़ती रहने एवं पुनर्मुद्रणके लिये प्रेमी पाठकों और जिज्ञासुओंके निरन्तर प्रेमाग्रहके फलस्वरूप अब वही 'नारी-अङ्क' ग्रन्थाकारमें उपलब्ध कराया गया है।

पृष्ठ-संख्या ८००, अनेक सादे तथा रेखा-चित्रोंके अतिरिक्त भावपूर्ण बहुरंगे चित्र ९, कपड़ेकी मजबूत जिल्दसहित मूल्य ५०.०० (पचास रुपये) मात्र, डाकखर्च १४.०० (चौदह रुपये) अतिरिक्त।

श्रीमद्भगवद्गीता—तत्त्व-विवेचनी-टीका

(टीकाकार—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

श्रीमद्भगवद्गीतापर यह 'तत्त्व-विवेचनी' हिन्दी-टीका विशेष महत्त्वकी है। मर्मज्ञ टीकाकारने गीताके श्लोकोंकी विस्तृत व्याख्या प्रश्नोत्तर-रूपमें प्रस्तुत कर गीताके गूढ़ रहस्योंका उद्घाटन सरल, सुबोध भाषामें किया है। २५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें यह तात्त्विक विवेचन व्याख्यात्मक शैलीद्वारा अधिक सरल और समझने योग्य बनाया गया है। पृष्ठ-संख्या १०००, ऑफसेटकी स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त, भावपूर्ण रंगीन चित्र १८, बहुरंगे आकर्षक चित्रावरणसे सज्जित, प्लास्टिक-जाकेटसे सुरक्षित और सुसज्जित इस राजसंस्करणका मूल्य ३०.०० (तीस रुपये) मात्र, डाकखर्च १५.०० (पंद्रह रुपये) अतिरिक्त।

इसका सामान्य संस्करण (बहुरंगे चित्र कुल ४ तथा कपड़ेकी जिल्दसे युक्त) भी उपलब्ध है। मूल्य १५.०० (पंद्रह रुपये) मात्र, डाकखर्च १५.०० (पंद्रह रुपये) अतिरिक्त।

श्रीमद्भगवद्गीता—साधक-संजीवनी-टीका

(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

व्याख्यात्मक शैलीमें सरल, सुबोध भाषामें प्रस्तुत गीताकी यह बृहत् टीका गीताका मर्म समझनेमें परम सहायक और उपादेय है। पृष्ठ-संख्या ११७२, बहुरंगे चित्र १८, सादे चित्र ७, रेखा-चित्र १०, मजबूत जिल्द, बहुरंगे आकर्षक प्लास्टिक-युक्त आवरणसहित इस विशेष संस्करणका मूल्य ५०.०० (पचास रुपये) मात्र, डाकखर्च १७.५० (सतरह रुपये पचास पैसे) अतिरिक्त।

इसका सामान्य संस्करण (पृष्ठ-संख्या ११६६, रंगीन चित्र ४, कपड़ेकी जिल्दसहित) भी उपलब्ध है। मूल्य ३५.०० (पैंतीस रुपये) मात्र, डाकखर्च १७.०० (सतरह रुपये) अतिरिक्त।

गीता-दर्पण (लघु संस्करण)

परम श्रद्धेय स्वामीजी (श्रीरामसुखदासजी) महाराजका यह ग्रन्थ गीता-तत्त्वको प्रत्यक्ष देखने (समझने)के लिये मानो दर्पण-सदृश ही है। इसके पूर्वार्धमें अठारहों अध्यायोंके तत्त्वोंपर प्रश्नोत्तर-रूपमें प्रकाश डाला गया है तथा उत्तरार्धमें गीताके प्रधान-प्रधान विषयोंका लेखरूपमें सारगर्भित विवेचन विस्तारसे किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें गीताके शब्दार्थ और भावोंको समझनेके लिये व्याकरण तथा छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचनके साथ श्लोकोंके परिमाणके विषयमें प्रामाणिक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। पाठकोंके सुविधार्थ पाठ-विधियाँ भी निर्दिष्ट हैं।

पृष्ठ-संख्या ६५०, आफॅसेटकी स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त, बहुरंगे चित्र १६, सुनहरे अक्षरों एवं स्वर्णिम सुन्दर रेखा-चित्रसे उत्कीर्ण आकर्षक-मजबूत जिल्द, मोटे कवर पेपरद्वारा निर्मित आकर्षक सचित्र मंजूषा (बंद कवर पैकेट)से सुरक्षित, मूल्य २०.०० (बीस रुपये) मात्र, डाकखर्च ७.५० (सात रुपये पचास पैसे) अतिरिक्त। सुविधाजनक छोटे आकारमें होनेसे यात्रादिमें अध्ययनार्थ रखने योग्य है।

महत्त्वपूर्ण शिक्षा

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

इस पुस्तकमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, कर्म, सदाचार, सत्सङ्ग, स्वाध्याय एवं हमारे आध्यात्मिक चेतनाकी प्रेरणा-स्रोत—'हिन्दू-संस्कृति'के विषयमें शास्त्रोंके आधारपर सुन्दर विवेचन है। कई महत्त्वपूर्ण विषयोंको कथा-कहानियों-द्वारा समझाया गया है। इस प्रकार यह सभी पाठकोंके लिये उपयोगी और प्रेरणाप्रद है। पृष्ठ-संख्या ३५२, बहुरंगा आकर्षक चित्रावरण, मूल्य ६.०० (छः रुपये) मात्र, डाकखर्च ८.०० (आठ रुपये) अतिरिक्त।

गृहस्थमें कैसे रहें ?

[संशोधित संस्करण]

(लेखक—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गृहस्थोचित धर्म, व्यवहार और कर्तव्य-पालनकी बातें इस पुस्तकमें सरल, सुबोध भाषामें समझायी गयी हैं। इस संशोधित संस्करणमें 'संतानका कर्तव्य' और 'महापापसे बचो'—दो महत्त्वपूर्ण विषय और सम्मिलित किये गये हैं। (इन दोनों विषयोंपर इन्हीं नाम-शीर्षकोंसे लेखककी दो छोटी पुस्तिकाएँ अलगसे भी उपलब्ध हैं) पुस्तककी प्रेरणाप्रद सामग्री सभी आयु-वर्गके स्त्री-पुरुषों और बालकोंके लिये भी विशेष उपयोगी है।

पृष्ठ-संख्या १३०, स्वच्छ, सुन्दर, छपाईसे युक्त, बहुरंगे सचित्र आवरणसे सजित, मूल्य ४.०० (चार रुपये) मात्र, डाकख़र्च ७.०० (सात रुपये) अतिरिक्त।

वासुदेवः सर्वम्

(लेखक—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रस्तुत पुस्तकमें परम श्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजद्वारा समय-समयपर साधकोंके लिये लिखवाये गये नौ लेखोंका संग्रह है। यह लेख-सामग्री नितान्त साधनोपयोगी और तत्त्वका सहज बोध करानेमें सक्षम होनेसे साधकों तथा जिज्ञासुओंके लिये बड़े कामकी और दिशा-निर्देश देनेवाली है। स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त, पृष्ठ-संख्या ७२, बहुरंगा आकर्षक तथा कलात्मक सचित्र आवरण, मूल्य २.५० (दो रुपये पचास पैसे) मात्र, डाकखर्च ६.५० (छः रुपये पचास पैसे) (रजिस्टर्ड-बुकपोस्टसे) अतिरिक्त।

'कन्हैया'

[प्रथम बार एक नयी धारावाहिक प्रकाशन-योजना]

'गीताप्रेस-चित्रकथा' धारावाहिकके अन्तर्गत प्रथम चित्रकथाके रूपमें 'कन्हैया' शीर्षकसे एक नया धारावाहिक गीताप्रेस, गोरखपुरसे बहुत शीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है। जिसके अन्तर्गत भगवान् श्रीकृष्ण तथा भक्तोंके सरस चरित्रोंका बहुरंगे भावमय आकर्षक चित्रोंके साथ मनोहारी एवं रोचक वर्णन रहेगा। सभी आयु-वर्गके स्त्री-पुरुष और बालक सुविधापूर्वक पढ़कर इससे अधिकाधिक लाभ उठा सकें—इस दृष्टिसे यह अच्छे मोटे कागजपर छापा जा रहा है। आकार ७१/४'' × १०१/२'', पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य ५.०० (पाँच रुपये) मात्र, डाकखर्च अतिरिक्त।

इच्छुक सज्जनोंको डाकखर्चसहित अग्रिम मूल्य शीघ्र भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लेनी चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभाग, पो॰— गीताप्रेस, गोरखपुर

'कल्याण'के ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्याका उल्लेख करें

'कल्याण'के सभी ग्राहक महानुभावोंसे विनम्र अनुरोध है कि वे प्रत्येक पत्राचारमें और मनीआर्डर आदि भेजते समय भी अपनी आवंटित ग्राहक-संख्याका उल्लेख कृपया अनिवार्य रूपसे करें। ऐसा करनेसे उनके निर्देशानुसार कार्यकी सम्पन्नता शीघ्र और सुनिश्चित होगी।

पत्रोंपर ग्राहक-संख्या न होनेसे सुचारुरूपसे कार्यकी सम्पन्नतामें अवरोध उपस्थित हो जाने एवं ऐसे पत्रोंके अधिक संख्यामें आ जानेपर उनके उत्तर देनेमें प्रायः कठिनाई होती है। ग्राहक-संख्यारहित पत्रोंको कम्प्यूटर-विभागको भेजकर पुनः ग्राहक-सं[illegible] अङ्कित करानेकी प्रक्रियामें पर्याप्त समय और शक्ति व्यय होते हैं; परिणामतः कार्य-सम्पन्नतामें अनावश्यक विलम्ब और असुविधा भी होती है। अतएव इस अनपेक्षित स्थितिसे बचनेके लिये यह आवश्यक है कि सभी ग्राहकोंद्वारा प्रत्येक पत्रपर अपनी आवंटित शुद्ध ग्राहक-संख्या हर दशामें अनिवार्यतः लिखी जानी चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर